वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत,

राम नाम राख्यौ अति रसना सुघर में ।

हिन्दुन की चोटी रोटी है राखी सिपाहिन की,

काँधे में जनेऊ राख्यौ माला राखी गल में ।

मीड़ि राखे मुगल मरोड़ राखे पादसाह,

बैरी पीस राखे वरदान राख्यौ कर में ।

राजन की हद्द राखी तेजबल सिवराज,

देव राखे देवल स्वधर्म्म राख्यौ घर में ॥”

भूषण

वक्तव्य।

मैं कुछ वर्षों से अपने प्रेस में ऐतिहासिक ग्रन्थ छपाता रहा हूं। अपने देश के इतिहास-प्रसिद्ध वीर पुरुषों के जीवनचरित्र छापने की सदैव मेरी उत्कट अभिलाषा रही है। कुछ समय से मेरा विचार छत्रपति शिवाजी के पूर्ण जीवन-चरित्र छापने का था। दैवयोग से एक दिन पण्डित ताराचरण अग्निहोत्री जी से वार्त्तालाप होने पर ज्ञात हुआ कि आपने शिवाजी का जीवन-चरित्र बहुत से ऐतिहासिक ग्रन्थों को पढ़ कर स्वतन्त्र रूप से लिखा है और आप शीघ्र ही उसे छपाने के लिये मुझे देना चाहते हैं। मैंने सहर्ष उस का छापना स्वीकार किया। मैं अग्निहोत्री जी का विशेष कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे हस्तलिखित प्रति प्रदान की और उस को संशोधित कर छापने का पूर्ण अधिकार मुझ को दिया। अब तक शिवाजी के जो दो एक जीवनचरित्र हिन्दीभाषा में छपे हैं वे अपूर्ण हैं। इस जीवन-चरित्र में शिवाजी के सम्बन्ध की प्रायः सब ही बातें विस्तार पूर्वक प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों को पढ़ कर लिखी गई हैं। अग्निहोत्री जी को ऐतिहासिक ग्रन्थों के पढ़ने का विशेष अनुराग रहा है। बी. ए. परीक्षा में इतिहास

उनका एक विशेष प्रिय 'सवजक' था। उसी ऐतिहासिक प्रेम का फल स्वरूप यह ग्रन्थ है।

अग्निहोत्रीजी ने इस पुस्तक को किञ्चित् क्लिष्ट भाषा में लिखा था। मैंने भाषा में सरलता लाने के विचार से जहां तहां शब्द बदल दिये हैं इसलिये सम्भव है कि हमारे योग्य पाठकों को भाषा किसी किसी स्थल पर अयुक्त सी ज्ञात हो। अग्निहोत्रीजी की लिखी यह प्रथम ही पुस्तक है तथापि भाषा सरस है और भाव तो बहुत ही प्रशंसनीय हैं। मैं समझता हूं कि सब बातों के विचार से हिन्दी भाषा में यह एक बहुत ही उत्तम जीवन-चरित्र लिखा गया है।

आगरा — हनुमन्त सिंह रघुवंशी।

ता०—१—१—१९१४

भूमिका ।

इतिहास साहित्य का एक अङ्ग है और जीवन-चरित्र इतिहास का प्राण है। हिन्दी साहित्य में इतिहास एवं जीवन-चरित्रों की बहुत कमी है। 'स्वाधीनता' की भूमिका लिखते हुए पंडित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने लिखा है कि "यदि कोई यह कहे कि हिन्दी के साहित्य का मैदान बिल्कुल ही सूना पड़ा है तो उस के कहने को अत्युक्ति न कहना चाहिये। दस पांच क़िस्से कहानियां, उपन्यास या काव्य आदि पढ़ने लायक़ पुस्तकों का होना साहित्य नहीं कहलाता।" पंडित जी के उपर्युक्त वाक्य सर्वथा सत्य हैं। जब तक साहित्य इतिहास आदि से पुष्ट नहीं होगा तब तक उस की पूर्ण वृद्धि नहीं हो सकती है। वृद्धि के लिये उत्तमोत्तम तथा उपयोगी पुस्तकों के लिखे जाने की आवश्यकता है। इसी भाव को ले कर हम ने इस पुस्तक को लिखा है।

हिन्दी-साहित्य-संसार में इसी पुस्तक को ले कर हम प्रवेश करते हैं। यह जीवन-चरित्र उस महान् पुरुष का है जिस का नाम प्रायः समस्त शिक्षित भारतवासियों की जिह्वा पर रहता है। हिन्दुओं में छत्रपति शिवाजी के प्रति कितनी श्रद्धा है उस के लिखने की यहां आव-

श्यकता नहीं है। इस चरित्र में उन्हीं श्रद्धास्पद महान् पुरुष की जीवनी है। अद्यावधि हिन्दी में ऐसे पुरुष-रत्न की कोई अच्छी जीवनी नहीं थी। अच्छी से मेरा तात्पर्य यह है कि ऐसी जीवनी नहीं लिखी गई जिनमें उन शङ्काओं का उचित समाधान हो जो प्रायः विदेशीय इतिहास-लेखकों द्वारा उन के विषय में की जाती रहीं हैं और उन अपूर्व घटनाओं का पूर्ण वर्णन हो जो उन के समय में हुईं थीं। विदेशियों ने शिवाजी पर जो कलङ्क लगाये हैं उन के दूर करने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है।

यह पुस्तक किसी पुस्तक विशेष के अधार पर नहीं लिखी गई है किन्तु वहुतसी ऐतिहासिक पुस्तकों का सार लेकर बनी है। दो एक स्थल पर हमने "महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात", "सिंहगढ़-विजय" तथा प्रयाग की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' से भी सहायता ली है जिसके लिए हम उपकृत हैं।

इस पुस्तक में कुछ त्रुटियां हैं। प्रथम त्रुटि तो यह है कि मराठी नामों के उच्चारण ठीक नहीं दिये जा सके हैं और द्वितीय कहीं २ पर कुछ अशुद्धियां रह गई हैं जो द्वितीय संस्करण में दूर कर दी जावेंगी। उपर्युक्त त्रुटियों के लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं।

इस पुस्तक के लिखने में पं० कृष्णविहारी जी मिश्र बी. ए. तथा इसके संशोधन में कुं० हनुमन्त सिंह जी रघुवंशी से बहुत सहायता मिली है अतएव हम इन दोनों सज्जनों के अति उपकृत हैं।

अन्त में पाठकों से यह निवेदन है कि वे इस पुस्तक के भावों पर ध्यान देकर हमारे परिश्रम को सफल कर उत्साह को बढ़ावें।

आगरा
माघ शुक्ला ११ सं० १९७० }

निवेदक
ताराचरण अग्निहोत्री।

विषय-सूची ।

महाराष्ट्र-केसरी
शिवाजी ।

प्रथम परिच्छेद ।
भौगोलिक वृत्तान्त ।

प्रकृति ने भारतभूमि को दो बड़े भागों में विभाजित किया है। विन्ध्याचल पर्वत इन की विभाजक रेखा है। देश का दक्षिणीय भाग अर्थात् भारत का वह भाग जो विन्ध्याचल के दक्षिण में है 'दक्षिण' कहलाता है। हिमालय से ले कर विन्ध्य पर्य्यन्त प्रदेश 'आर्य्यावर्त्त' अथवा 'उत्तरीय हिन्दुस्तान' के नाम से सम्बोधित होता है। वक्षःस्थल पर नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा एवं कावेरी आदि नदियों को बहाता हुआ 'दक्षिण' अपनी पूर्वीय सीमा को 'पूर्वीय घाट' तथा पश्चिमीय सीमा को 'पश्चिमीय घाट' बनाता है। विशाल हिन्द महासागर इस के दक्षिण में स्थित है।

दक्षिण का अन्तर्देश भी कतिपय स्वाभाविक भागों में विभक्त है। देश का वह भाग जो 'पश्चिमीय घाट' में

स्थित है 'कोकण' के नाम से प्रसिद्ध है। अनन्त-जल-राशि-शोभा-पूर्ण अरब समुद्र का पूर्वीय तट इस का पश्चिमीय किनारा है। पश्चिमीय घाट के गगनस्पर्शी पर्वत-श्रेणी-शिखर कोकण को द्वितीय स्वाभाविक उप-विभाग अर्थात् 'महाराष्ट्र' से भिन्न करते हैं। सतपुड़ा का वह भाग जो 'चान्दोर' के नाम से विख्यात है 'महाराष्ट्र' देश की उत्तरीय सीमा को दृढ़ करता है। महाराष्ट्र की पूर्वीय सीमा पर 'गोंडवाना' प्रदेश है। अब इस देश का दक्षिणीय भाग निज़ाम राज्य के अन्तर्गत है। महाराष्ट्र तथा बङ्गोपसागर से घिरा हुआ 'तैलङ्ग देश' है। कृष्णा नदी इस की दक्षिणीय सीमा है। कृष्णा से रामेश्वर तक प्रदेश का नाम 'द्राविड' है। द्राविड से ऊपर की ओर कोकण तक कर्णाट प्रदेश है।

इस की नदियां मुख्यतः नर्मदा, ताप्ती जो विन्ध्याचल से निकल कर अरब के समुद्र में गिरती हैं और गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, महानदी आदि अनेक छोटी २ नदियां हैं जो प्रायः बङ्गोपसागर में गिरती हैं।

दक्षिण देश की समस्त भूमि समतल नहीं है। पथिक उपर्युक्त पर्वतीय नदियों का आनन्द विन्ध्याचल से रामेश्वर तक लूट सकता है। प्रकृति ने इस देश की पर्वत-मालाओं की रचना इस प्रकार से की है कि

सहसा कोई शत्रु देश पर आक्रमण न कर सके। इतिहास पर दृष्टि डालने से इस बात का पता चलता है कि यदि उत्तरीय भारत में बीस विदेशी आक्रमण हुए हों तो कदाचित् इस देश पर आक्रमणकारियों की संख्या दस से अधिक न पहुंचेगी। महाराष्ट्र तथा कङ्कण देश उन नैसर्गिक लाभों से युक्त है जिन से गङ्गा एवं सिन्धु प्रदेश वञ्चित हैं। देशस्थ पर्वत-समूह 'दक्षिण' की उत्तर ओर से उसी प्रकार रक्षा करते हैं कि जिस प्रकार हिमालय उत्तरीय भारत को उत्तर से सुरक्षित रखता है। महाराष्ट्र और कङ्कण देश सह्याद्रि तथा सतपुड़ा की दुर्भेद्य पर्वत-मालाओं के उदर में स्थित हैं। इन पर्वतों की छोटी २ शाखाएं जो इतस्ततः प्रसरित हैं गोदावरी आदिक नदियों के घूम घुमाव के कारण भूमि को घोर असमतल बनाती हैं। प्रकृति ने इन पर्वतों का निर्माण भी इसी प्रकार का किया है कि इन पर उत्तमोत्तम तथा सुदृढ़ दुर्ग बन सकें जो समय पड़ने पर शत्रु से रक्षा करें। कहीं २ तो पर्वतों ने प्राकृतिक दुर्भेद्य दुर्गरचना की है इसी कारण जिस राज्य के अन्तर्गत 'दक्षिण' का पर्वतीय प्रदेश रहा था वही समस्त देश का अधिपति बन सका था।

उपर्युक्त कारणों से इस देश का जल-वायु भी अन्य प्रदेशों से अच्छा है। उत्तर की तरह इस देश में असह्य

शीतोष्ण नहीं होता है। अतएव यहां के निवासी वर्ष भर ही आनन्द मनाते हैं। पहाड़ों के कारण यद्यपि भूमि अति उर्वरा नहीं है पर ऊसर भी नहीं है। नदी तटस्थ-पृथ्वी अत्यन्त उपजाऊ है। इन प्रान्तों में बारह मास वसन्त ऋतु का अखण्ड राज्य रहता है। नैसर्गिक कारण-वशात् जन-संख्या कितनी हुई बनी है। प्राकृतिक सहा-यता-प्राप्त यूनानवासी जिस प्रकार अतीव बलशाली हुए थे ठीक उसी प्रकार महाराष्ट्र भी उन्नत हुए हैं। देश की स्वाभाविकता सर्वदा देश तथा वासियों की उन्नति तथा अवनति का कारण हुआ करती है। इति-हास साक्षी है कि वे देश जो पर्वतमय हैं अवश्यमेव वहां के मनुष्य बलवान्, धैर्यवान् तथा युद्धकुशल होते हैं। प्राचीनकाल से आज तक जो राज्य विख्यात हो सके हैं उनका आदिम मूल पर्वतमय देश ही था।

महाराष्ट्र भी इसी प्रकार का देश है तो इस की उन्नति क्यों न होती। स्वाभाविक भीषणता का दिग्द-र्शन कराने को 'कङ्कण' सर्वथा प्रस्तुत है। पर्वतीय नद एवं नदियों का कलकल शब्द, विशाल वनमालाओं में कराल हिंसक व्याघ्र मृगेन्द्रादि नररक्त के प्यासे जन्तुओं को हृदय कम्पित करने वाली घोर गर्जन तथा ग्रीष्मकाल के तीव्र चंडवात की सनसनाहट अवश्यमेव मनुष्यों में भय उत्पादन करती है। जिस समय का वर्णन इस पुस्तक

में लिखा गया है प्रायः उस समय में यह देश पथहीन था। दुर्भाग्यवश यदि किसी पथिक को इन शिखर-मालाओं पर चढ़ना उतरना पड़ता था तो उसको अपने प्राण हथेली पर रखने पड़ते थे। विपत्तिजनक सह्याद्रि के शिखर-पथों को भेद कर पथिक स्वाभाविक मन हरण करने वाले स्थान में उपस्थित होते थे। यहीं लह-लहाती हुई हरित-दूर्वा-दल-पूर्ण भूमि है। कङ्कण की भयङ्करता इस प्रदेश में नाम मात्र को भी नहीं है। यह एक पर्वतमय रमणीय भू-भाग है। यद्यपि 'कङ्कण' प्रदेश की सी इस में भी पर्वत-मालाऐं हैं पर इन में वह रौद्र रस नहीं है। इन मालाओं पर पर्य्यटन करने से एक अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। यह भूमि-भाग पश्चिम से पूर्व की ओर ढालू है। यहां से पूर्व की ओर पृथ्वी समतल है परन्तु अन्तिम पूर्वी भाग दर्पणोदर क्षेत्र है। इस देश की माप प्रायः बारह लाख वर्ग मील है।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि प्रकृति ने इस देश का ऐसा सङ्गठन किया है कि इस देश के मनुष्य स्वतन्त्रता देवी के पूजक होवें। जिस समय आर्य्यजाति उत्तरीय भारत में आई थी उस समय द्राविडों का बाहुल्य था। इतिहास सिद्ध करता है कि द्राविडों से आर्य्यों का भयङ्कर युद्ध हुआ उस में द्राविड पराजित हुए और

दक्षिण में चले आये । आर्यों ने बहुत काल तक इन की ओर पुनः दृष्टि न डाली और ये स्वतन्त्रता से दक्षिण में उन्नति करते रहे । पश्चात् पीछे आर्यों का आक्रमण 'दक्षिण' में हुआ पर इस वार वह भीम शक्ति से न था । कारण यह था कि द्राविड जाति भी आर्यागमन-समय शक्तिहीन नहीं थी । इस वार दोनों में मैत्री भाव स्थापित हो गया । द्राविडों ने आर्यों के गुणों का अनुकरण किया और आर्यों ने द्राविडों का अनुसरण किया । एक ने दूसरे के अवगुणों को छिपा डाला । इन दोनों के सम्मेलन ने सम्मिलित जाति में एक नवीन जीवन पैदा कर दिया । उत्तरीय भारत में जो संस्थाएँ प्रायः अविज्ञात थीं दक्षिण में उत्पन्न हुईं । इन संस्थाओं में 'ग्रामिक संस्था' ने अति उन्नति की । इसी संस्था में प्रजातन्त्र राज्य स्थापन का मूल था पर दुर्भाग्यवश उस कोटि में यह पूर्ण उत्तीर्ण न हुई तथापि इस के द्वारा स्वतन्त्रता का बीज बढ़ता रहा। इसकी वृद्धि ने आधुनिक 'पञ्चायत' 'रैयतवारी,' तथा 'मिरासी' आदि को जन्म दिया जिन के कारण अद्यापि उन के कई विषयों में स्वतन्त्रता की मूल स्थित है । शिवाजी को इन संस्थाओं ने राज्य-स्थापन करने में बहुत सहायता दी थी क्योंकि इन के कारण महाराष्ट्र प्रायः ऐक्य-सूत्र-बद्ध थे ।

द्वितीय परिच्छेद ।

महाराष्ट्र में जागृति ।

प्रथम परिच्छेद में यह बात दिखलाई जा चुकी है कि महाराष्ट्रों में स्वतन्त्रता का बीज किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं बोया गया था किन्तु यह उन में चिरकाल से स्वाभाविक था । इतिहास से यह बात सिद्ध होती है कि महाराष्ट्र बहुत दिनों तक स्वतन्त्र रहे पर अला-उद्दीन खिलजी के आक्रमणकाल से ले कर शिवाजी के समय तक वे परतन्त्र रहे । पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो उस परतन्त्र अवस्था में भी अन्य विजित जातियों से अधिक स्वतन्त्रता धारण किये रहे जिस का उल्लेख समयानुकूल होगा । ऐतिहासिकों को परम आश्चार्य्य हुआ था जिस समय उन्होंने महाराष्ट्र जाति का अभ्युदय शिवाजी द्वारा देखा। वे अचम्भे में हैं कि शताब्दियों पर्य्यन्त जो जाति परतन्त्रता के बन्धन में बद्ध रही हो हठात् एक बृहत् राज्य को पछाड़ कर स्वतन्त्रता स्थापित कैसे कर सकती है । महाराष्ट्रों का इतिहास लिखने वाले ग्राण्ट डफ़् तो इतना ही लिख कर रह गये कि जिस प्रकार वनाग्नि हठात् उत्पन्न हो जाती है और अपनी लपटों को इतस्ततः प्रसरित कर देती

है ठीक उसी प्रकार का महाराष्ट्र अभ्युदय है परन्तु साहब बहादुर का यह मत युक्ति-सङ्गत नहीं है। महाराष्ट्रों का अभ्युदय कार्य्य-कारण से सम्बन्ध रखता है।

अन्य बड़े बड़े इतिहासवेत्ताओं ने भी इस विषय पर ऐसी ही भूलें की हैं। उन्होंने इस बात को दिखलाया है कि जिस प्रकार एक लुटेरा अशान्त राज्यकाल पाकर हलचल मचा देता है और कभी छोटा मोटा राज्य भी बना लेता है शिवाजी की भी वही अवस्था थी। मुग़ल राज्य में अशान्ति थी। औरङ्ग़ज़ेब के कारण दक्षिण के यवन-नरेश शिथिल हो गये थे अतएव ऐसी दुरवस्था में शिवाजी ने मौक़ा पाकर महाराष्ट्र-राज्य स्थापन किया। सूक्ष्म दृष्टि से यह सिद्धान्त निर्मूल एवं भ्रमात्मक है। शिवाजी का राज्यस्थापन में केवल उतना ही भाग है जितना एक मनुष्य तृणों को लेकर एक मोटा रस्सा तैयार कर देता है। थोड़ी देर के लिये यदि हम उपर्युक्त सिद्धान्त को मान लें कि शिवाजी लुटेरे थे और लूट मार करके उन्होंने अपना राज्य बढ़ाया। पर क्या इतिहास इस बात को सिद्ध कर सकता है कि किसी लुटेरे ने ऐसे दृढ़ राज्य की नींव डाली हो जो शताब्दियों तक अपनी स्वतन्त्रता रख सके। हैदरअ़ली ने भी एक राज्य स्थापित किया था पर वह शीघ्र ही नाशत्व

को प्राप्त होगया। अलीवर्दी खां भी तो बंगाल का नवाब बन बैठा था पर उनका राज्य भी बहुत दिन न रहा। इन सबका कारण यह था कि ये राज्य एक व्यक्ति विशेष द्वारा स्थापित हुए थे। उन में जाति की सहायता नहीं थी। शिवाजी की भी यदि यही अवस्था होती तो महाराष्ट्र राज्य आज तक न रह सकता। शिवाजी के स्वर में सहस्रशः स्वर मिले हुए थे। उस की मूल दृढ़ थी।

अब इस बात के दिखलाने का यत्न करना पड़ता है कि शिवाजी के पास उन्नति-समय में कौन २ सी बातें सहायक हुईं। सब से प्रथम बात जो हम पहिले लिख आये हैं कि महाराष्ट्रों में स्वातन्त्र्य-बीज स्थित था, शिवाजी ने उस को सींच कर बढ़ाने में सहायता पहुंचाई। शिवा जी के उन्नतिपथ को सुगम करने के निमित्त यथायोग्य पुरुष उपस्थित थे। उन को जिस विषय में आवश्यकता पड़ती थी उस विषय के योग्य पुरुष प्राप्त हो जाते थे। इन सब के साथ ही साथ औरङ्गज़ेब की नीचता और क्रूरता ने ही इस प्रचण्ड अग्नि को प्रज्वलित कर दिया। मनुष्य की यह प्रकृति है कि जब कोई उस के पवित्र विश्वासों पर आक्रमण करता है तो उस को असह्य होजाता है। यवनों ने पूर्व ही में वहां अपना राज्य स्थापित किया था पर

उन्हों ने प्रचलित धर्म्म पर कभी आक्रमण नहीं किया अतएव महाराष्ट्रों की धार्म्मिक स्वतन्त्रता उस समय बनी रही पर औरङ्गजेब के मज़हबी तास्सुब ने महाराष्ट्रों के हृदयों को दग्ध कर दिया। जिन मनुष्यों के धर्म्म में चिरकाल से हस्तक्षेप नहीं हुआ था उन को औरङ्गजेब का 'धर्म्म-कुठार' असह्य होगया और उन के हृदयों में क्रोधाग्नि सुलगने लगी जिस में शिवाजी ने एक फूंक मार दी।

शिवा जी को सब से अधिक सहायता देने वाला ऐक्य-मन्त्र था। तत्कालीन इतिहास बतलाता है कि उस समय जो धार्मिक शिक्षा प्रचरित हो रही थी उस का मूल मन्त्र नीचाति नीच जातियों से ले कर ब्राह्मण पर्य्यन्त सब को ऐक्य-सूत्र में बांधना था। नीच जातियां भी शिक्षा प्राप्त कर अपना धर्म्म समझने लगीं थीं। इन सब के नेता श्री समर्थ रामदास थे। शिवा जी के गुरु होने के सिवाय वे देश-गुरु भी थे अतएव शिवा जी को इन के द्वारा राज्य स्थापन में अतीव सहायता मिली थी। इन सब के साथ ही वे प्रचलित संस्थाएं जिन के कारण प्रत्येक महाराष्ट्र में यह शक्ति उत्पन्न हुई थी कि वह स्वयं प्रत्येक कार्य्य को सरलता से कर सकता था शिवा जी को अतीव सहायक हुईं।

उपरोक्त विषयों पर दृष्टिपात करने से यह प्रकट होता है कि शिवाजी के पास लुटेरों की सामग्री नहीं थी किन्तु उन को उस समय ऐसेही मनुष्य तथा व्यति-करण मिल गये थे जिन के कारण शिवाजी एक चिरस्थायी राज्य की नींव डाल सके।

महाराष्ट्रों की १६ वीं शताब्दि में जागृति अघटन घटना नहीं है। उस का सम्बन्ध कार्य्य-कारण से है। इस परिवर्त्तन का उस समय होना अवश्यम्भावी था अतएव हुआ। अब यहां पर इस बात की आवश्यकता है कि जिस समय शिवाजी ने अपने राज्य-स्थापन का यत्न प्रारम्भ किया उस समय दक्षिण की क्या अवस्था थी और वह अवस्था क्यों हुई।

१६ वीं शताब्दि के प्रथम चतुर्थांश में दक्षिण में गोलकुण्डा, बीजापुर, अहमदनगर, तथा मुग़लों का राज्य था। इन सब का सूक्ष्मतया इतिहास वर्णन-निमित्त हम को कुछ समय पूर्व जाना पड़ता है। दक्षिण में प्रथम यवन आक्रमण-कर्त्ता अलाउद्दीन ख़िलजी हुआ। सन्१२९४ ईसवी में यह कारा से दक्षिण की ओर चल पड़ा। दक्षिण पर इस ने क्यों आक्रमण किया? इतिहास इस के उत्तर देने में असमर्थ है। वह इतना बतला कर चुप हो जाता है कि अलाउद्दीन द्वितीय सि-

कन्दर बनने की हार्दिक इच्छा रखता था। राजनीति-विशारद होने के कारण उस की दृष्टि दक्षिण ही पर पड़ी। कारण यह कि वहां के देशीय राज्यों में अनबन थी। राजवंश निरन्तर युद्ध के कारण प्रायः निर्बल एवं शिथिल हो गये थे। ऐसा अनुकूल समय पाकर वह आठ सहस्र अश्वारोही सैन्य ले कर एलिचपुर होता हुआ देवगिरि के सम्मुख जा पहुंचा। रास्ते में यदि किसी ने पूछा तो यह उत्तर दिया कि चाचा साहब से निर्वासित हो कर मैं राजमन्द्री नरेश की शरण में जा रहा हूं। देवगिरि-नरेश रामदेव ने भी उस की कुटिल नीति के चंगुल में फँस कर कई शताब्दियों के लिये यवनों को दक्षिण का अधिपति बना दिया। अलाउद्दीन रामदेव को पराजित कर दिल्ली की ओर लौट पड़ा और वहां आ कर अपने चचा जलालुद्दीन को मार कर दिल्लीश्वर हुआ।

इधर स्वतन्त्रता-सेवी यादवराज भी शत्रु को दूर गया देख पुनः स्वतन्त्र हो गये पर भगवान् की ऐसी इच्छा न थी। अलाउद्दीन ने दिल्लीश्वर होने के पश्चात् पूर्ण रूप से दक्षिण विजय करना विचारा। इस समय रामदेव ने कर देना बन्द कर दिया था। इसी का बहाना ले कर अलाउद्दीन ने मलिक क़ाफूर को

दक्षिण-विजय-निमित्त भेजा। मालवा और खानदेश होता हुआ मालिक काफूर देवगिरि जा पहुंचा। उस का पहुंचना और हिन्दू सूर्य्य का राहुग्रस्त होना साथ ही साथ हुआ। सन् १३०३—४ में देवगिरि का पुनः पतन हुआ। इस के उपरान्त वह तैलंग देश में पहुंचा परन्तु वहां मनोरथ-सिद्धि न हुई। लौटते समय उस ने वारङ्गल दुर्ग को विजय कर वहां के राजा को अपने अधीनस्थ बना कर सन्१३१० ई० में बल्लाल नरेश को राज्यच्युत किया। उस का वंशोच्छेदन कर वह रामेश्वर पहुंचा। वहां उस ने एक मसजिद बनवाई। उस के उपरान्त वह दिल्ली लौट गया। सन्१३१८—१९ई० में उस ने पुनः देवगिरि पर चढ़ाई की और इस बार उस ने देवगिरि तथा तैलंग प्रदेश को पठान-साम्राज्य का विभाग बना दिया। इस प्रकार से पठानों ने शताब्दि के चतुर्थांश में रामेश्वर से विन्ध्य पर्य्यन्त पठान-विजय-वैजयन्ती फहरा दी।

यह सब हुआ किन्तु स्वतन्त्रता का बीज शीघ्र नष्ट नहीं होता है। हरपाल देव ने पुनः स्वतन्त्रता स्थापित की पर यह स्वतन्त्रता अल्पकालिक थी। पठानों ने पुनः आक्रमण कर हिन्दुओं की स्वतन्त्रता छीन ली। इस के पश्चात् दिल्ली साम्राज्य में परिवर्त्तन हुआ और विक्षिप्त

सम्राट् मुहम्मद तुग़लक़ का समय आया । इस तुग़लक के समय तक दक्षिण एक प्रकार से स्वतन्त्र था । नर-आखेट-प्रिय सम्राट् तुग़लक ने दिल्ली के बदले दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाने का विचार किया । राजनैतिक कारणों से यह विचार प्रशंसनीय था पर अर्द्ध-विक्षिप्त होने के कारण लाभ के स्थान पर पूर्ण हानि हुई । धन-जन की हानि के सिवाय वह दक्षिण देश को भी सदा के लिये खो बैठा । इस की क्रूरता ने विजय-नगर तथा बहमनी-राज्यों को जन्म दिया । विजयनगर का वृहत् राज्य हिन्दुओं की स्वतन्त्रता के बीज का अङ्कुर था ।

चौदहवीं शताब्दि के मध्यकाल में दक्षिण में केवल दो बड़े राज्य थे । "दक्षिण" के दक्षिण में हिन्दू राज्य विजयनगर था और उस के उत्तर में बहमनी राज्य । थोड़े दिनों के उपरान्त इन दोनों राज्यों में. वैमनस्य हो गया जिस का फल यह हुआ कि बहमनी-राज्य स्वतः ही पांच विभागों में विभक्त हो गया और विजयनगर सन् १५६५ ई० में रसातल को चला गया । विजयनगर के पतन ने इन नवीन पांचों राज्यों की शक्ति को बढ़ा दिया था । इस के पश्चात् मुग़लों ने दक्षिण में हस्ता-क्षेप करना प्रारम्भ किया और अन्त को औरङ्गज़ेब ने

सत्रहवीं शताब्दि के अन्त में दक्षिण के यवन-राज्यों का चिन्ह इतिहास से मिटा दिया। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इन चार शताब्दियों में महाराष्ट्रों की क्या अवस्था थी और शिवाजी ने उन को तथा यवन-राज्यों को किस अवस्था में पाया कि जिस से उन्हों ने हिन्दू राज्य का पुनरुत्थान किया।

यवनों ने यद्यपि दक्षिण को पराधीनता के बन्धन में बांध दिया था पर उन पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया था। यवन यहां अत्याचार करते पर कतिपय कारणों से उन को अपना हाथ रोकना पड़ा। उत्तरीय भारत के यवनों को नवीन सुशक्त यवन पश्चिम से मिल जाते थे पर दक्षिण के यवनों की यह अवस्था नहीं थी। यहां जो कुछ मुसलमान बस गये थे उन के वंशजों को छोड़ अन्य नवीन आगन्तुक नहीं थे अतएव समयचक्र से उन में महान् परिवर्त्तन हो गया। उन में सहवास के कारण कट्टरपना अत्यन्त स्वल्प रह गया। हिन्दुओं के निरन्तर सम्पर्क के कारण उन के भाव बहुत ही बदल गये।

यवन-आक्रमणकारियों के साथ सब युद्धप्रिय योद्धा थे, राज्य-कार्य्य-दक्ष साथ में नहीं थे अतएव राज्य-कार्य्य बहुत कुछ महाराष्ट्रों के हाथ में आ गया।

यवन-राज्य यहां जितना प्राचीन होता गया उतना ही महाराष्ट्रों का हाथ राज्य-शासन-विभाग में बढ़ता गया। बहमनी-राजत्वकाल में राज्य-कार्य्य-कर्त्ता दिल्ली से आते थे। वे प्रायः ब्राह्मण और क्षत्री होते थे। इन्होंने इस-देश-वासियों को कार्य्यकुशल देख कर उनको राज्य-कार्य्य में लेना प्रारम्भ किया। कुछ समय पश्चात् उत्तर से राज्य-कार्य्य-कर्त्ताओं का आना कम हुआ अतः महाराष्ट्रों की इस विभाग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। यहां तक कि जब बहमनी राज्य पांच भागों में विभक्त हो गया तो समस्त कार्य्य इन के हाथों में आ गया। इस समय के पूर्व जो कुछ काम फ़ारसी अथवा उर्दू में होता था अब देशीय भाषा में होने लगा। महाराष्ट्रों तथा यवनों का सम्बन्ध प्रतिदिन घनिष्ट होने लगा। सेना में भी महाराष्ट्रों ने घुसना प्रारम्भ किया और अल्पकाल में अपनी वीरता के द्वारा यवनों पर प्रभुत्व जमा लिया।

विषय-लोलुप यवन इस प्रकार से बहुत से कार्य्यों को महाराष्ट्रों पर छोड़ कर विलासिता के समुद्र में गोते लगाने लगे। महाराष्ट्रों को पाकर निरीक्षण-कार्य्य को छोड़ अन्य कामों से हाथ हटा लिया। बाहरी दशा तो यह थी ही आभ्यन्तरिक दशा में भी घोर परिवर्त्तन

हो रहा था। हिन्दू बालाओं को अपने 'हरम' में लेकर कामान्ध यवन एक प्रकार से उन के अनुचर होने लगे। हिन्दू-भावोन्नति में इस ने सहायता प्रदान कर महाराष्ट्रों की शक्ति को सहायता पहुंचाई। हिन्दू, जो कि भिन्न २ कारणों से स्वधर्म्म-पथ त्याग कर यवन हो गये थे, अन्त को हिन्दू वीर्य्य ही से उत्पन्न हुए थे। हिन्दू-रक्त उनकी नस २ में वह रहा था। अतएव उन के भाव अन्त को हिन्दुओं की ओर झुकते थे।

इन सब बातों के कारण दक्षिणी यवन औरंगजेबी यवन नहीं रहे थे। महलों में, दरबार में, राज्य-सञ्चालन में, सेना में, सर्वत्र ही हिन्दू-भाव व्याप्त हो रहे थे। जिधर देखो उधर हिन्दू ही हिन्दू दृष्टिगोचर होते थे। इस समय में महाराष्ट्रों ने इतनी उन्नति कर ली थी कि वे मन्त्रित्व पद भी प्राप्त करने लगे थे। परराष्ट्र-विभाग में हिंदू ही काम करते थे। जिस समय शिवाजी का मुगलों से युद्ध छिड़ गया था उस समय गोलकुण्डा में मदन पण्डित मन्त्री थे। उन्होंने ही शिवाजी की गोलकुण्डा से मुगलों के विरुद्ध सन्धि करवाई थी। बधजी जगदेवराज तो अपने समय के हुसेनअली थे। बहमनी-सम्राटों ने एक मरहटा प्रिटोरियन गार्ड तैयार किया था जिस का कि उल्लेख स्वयं फरिश्ता ने किया

है। उपरोक्त घटनाओं से यह निर्णय होता है कि यवन-बल प्रति दिन हीन होता जाता था और महाराष्ट्र-प्रभुत्व अहर्निश बढ़ता जाता था।

शिवा जी की उत्पत्ति के पूर्व महाराष्ट्र वंश कार्य्य-क्षेत्र में द्रुतगति से घोड़े दौड़ा रहे थे। इनके आठ वंश उस समय शक्तिशाली हो कर यवन-राज्यों के स्तम्भ स्वरूप थे। इन आठों में महान् शक्तिशाली सिंधखेद के यादव वंशीय थे। इन लोगों का वंशानुक्रम देवगिरि के यादवों से था। बरार राज्य में इस वंश ने परम ख्याति प्राप्त की थी। जिस समय मुग़लों ने दक्षिण के ऊपर आक्रमण किया था उस समय उन्हों ने लुक जी यादव की सहायता ली थी। फुलटन के निम्बालकर भी इन से कुछ पीछे न थे। बीजापुर-दरबार में मालवादी के झुंझराव एक परम प्रतिष्ठित योद्धा थे। मोहती और गुर्जरों ने तो वह भीमोन्नति की थी कि बीस सहस्त्र सैन्य के सेनानी हो गये थे। अहमदनगर के राज्य में भोंसला वंश भी इस उन्नति की दौड़ में अग्रसर होने का पूर्ण यत्न कर रहे थे और साथ ही साथ सफलता भी प्राप्त कर रहे थे। मोरे, शिकारी तथा महादिखी भी इन सब के समान गिने जाने के योग्य थे।

महाराष्ट्रों की इस पदानुक्रम-उन्नति ने यवन-

राज्य की कुञ्जी इन को दे दी। घाटमाला के पार्वतिश दुर्ग महाराष्ट्र जागीरदारों के अधिकार में आ गये थे। इन दुर्गों में हिन्दू-सैन्य तथा हिन्दू-सञ्चालन होता था। इस प्रकार से यवनों की शक्ति आन्तरिक भाव से जीर्ण शीर्ण हो गई थी। शिवा जी इन समस्त व्यवस्थाओं से अपरिचित नहीं थे। उन्हों ने मूल में कुठार मार कर जीर्ण वृक्ष को भूतलशायी किया और उस के स्थान पर एक नवीन बीज बोया जिस में समयानुकूल अङ्कुर तथा शाखाएँ फूटीं पर काल-चक्र ने उस पर अकाल से कठिन तुषार बरसा कर सर्वदा के लिये उसको समय-तरल-तरङ्ग में शान्त कर दिया।
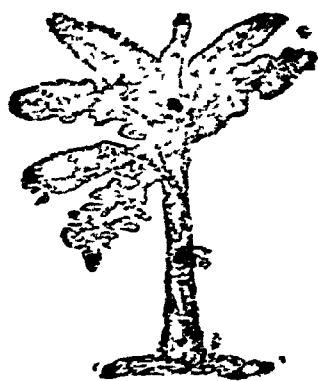
तृतीय परिच्छेद।

वंश-परिचय।

इतिहास पढ़ने वालों को पूर्णतया ज्ञात है कि किसी समय भारतवर्ष मुसलमानों द्वारा पूर्ण रूप से पद्-दलित हो गया था। हिन्दू जाति का प्रति दिन अधःपतन हो रहा था। पुरातन भारतीय गौरव नष्ट होता जाता था। हिन्दू राजा भी नैराश्यसागर में निमग्न हो रहे थे। अकबर की सर्वग्रासी-वक्र-नीति-पाश-बन्धन में राजस्थान के क्षत्रिय नरेश भी स्वतन्त्रता को तिलाञ्जलि दे दिल्ली के क्रीत दास तुल्य हो रहे थे। सूर्य्य-वंशीय होने का गर्व रखने वाले आंमेराधिपति तथा मारवाड़—नरेश भी मुग़ल सेनानी बन गये थे। बिचारे बीकानेर के पृथ्वीराज भी मुग़ल-बन्धन में पड़े तड़प रहे थे। पर धन्य है कालचक्र को कि औरंगज़ेब को दिल्ली-श्वर बना कर भारत का उद्धार कराया। भारत में प्र-बल परिवर्त्तन उपस्थित हुआ। परिवर्त्तन-वन्हि प्रथम दक्षिण में ही धधकी। अग्नि-प्रज्वालक प्रातःस्मरणीय क्षत्रिय-कुल-तिलक छत्रपति शिवाजी भोंसले थे।

परिवर्त्तन प्रथम दक्षिण में ही क्यों हुआ? इस का कारण क्या था? उत्तरीय भारत में परिवर्त्तन न हो कर दक्षिण में इस कारण हुआ कि यहां के मनुष्यों को

वह अवस्था न थी। उत्तर-वासियों पर धार्मिक अ-त्याचार तेरहवीं शताब्दि से होने लगा था। प्रथम उन्होंने भी अत्याचार के बदले सिर उठाया पर ऐक्य-सूत्र न होने के कारण उनके मनोरथ की सिद्धि न हुई। बारम्बार के आक्रमणों ने उन की शक्ति शिथिल कर दी। राजपूताने के क्षत्रियपुंगवों ने अनेकानेक प्रयत्न किये पर अकेला चना भाड़ न फोड़ सका। भीतरी द्वेष ने उन का सर्वनाश किया। हल्दीघाटे के युद्ध में एक भीम चेष्टा हुई थी पर वहां भी कुछ न हुआ। बारम्बार की असिद्धि ने उत्तरीय हिन्दुओं को निस्तेज कर दिया। दक्षिण की यह अवस्था न थी। न तो वहां इतने आक्रमण हुए और न उत्तर की तरह नादिर-शाही अत्याचार ही हुआ। महाराष्ट्रों पर जब अक-स्मात् घोर अत्याचार हुआ और उन की स्वतन्त्रता को धक्का लगने लगा तो वे किटकिटा कर उठ बैठे और यवन-राज्य के वह सांघातिक मुक्का मारा कि वह पुनः न उठ सका।

हम पीछे लिख आये हैं कि दक्षिण के यवन-राज्यों में आठ महाराष्ट्रीय वंश शक्तिशाली थे। उन में से एक भोंसला वंश भी था। उस भोंसला वंश का इतिहास उल्लेखनीय है। कारण यह कि शिवाजी इसी वंश के थे।

ऐतिहासिक जनोक्ति है कि प्राचीन दक्षिणीय राज्यों के नष्ट भ्रष्ट करने के निमित्त एक सूर्य्यवंशीय क्षत्रिय-कुमार ने यहाँ पदार्पण किया था। यह राजकुमार कौशल वंशीय था। कुमार ने दक्षिण में आ कर सूर्य्यवंशी राज्य की नींव डाली और बहुत काल तक अकण्टक राज्य किया। इस के उपरान्त महाराज शालिवाहन ने दक्षिण पर आक्रमण किया। उस की अत्याचारी सेना ने दक्षिण में हाहाकार मचा दिया। एक के बाद दूसरे राजकुल विलीन होने लगे। दक्षिणीय कौशल वंश का भी शालिवाहन के सम्मुख पतन हुआ। आबाल-वृद्ध-वनिता शालिवाहन की नर-रक्त-प्यासी सेना की शिकार हुईं। गर्भवती रानी पुष्पावती ने येन केन प्रकारेण अपने प्राणों को बचा कर अर्बुजी की कन्दराओं में आश्रय लिया। यहीं सीसोदिया वंश के पूर्वज राजा गुह (केशवादित्य) का जन्म हुआ *।

राजा गुह का पूर्व वंश-वृत्तान्त एक अन-ऐतिहासिक घटना प्रतीत होती है। उपर्युक्त घटना केवल जनोक्ति के आधार पर आश्रित है पर अर्वाचीन इतिहासज्ञों का मत है कि लोकोक्तियों से ऐतिहासिक बीज निकाला

---

* मेवाड़ के इतिहास (रा० ऐं० ओ० प्रेस, आगरा) में भी यह कथा सूक्ष्म रीति से वर्णित की गई है।

जा सकता है । इस जनोक्ति से यह सार निकलता है कि मगध राज्य के अभ्युदय के समय कौशल राज्य का पराभव हुआ था । यह एक ऐतिहासिक घटना है । पराभव असह्य समझ कर तद्वंशीय कोई राजकुमार राज्य स्थापन निमित्त कौशल देश छोड़ दक्षिण में आया हो और यहां छोटे मोटे राज्य की नींव डाली हो जिसको शालिवाहन ने नष्ट किया हो । अब यहां एक नई अड़चन आती है । इतिहास में कोई शालिवाहन नामक ऐतिहासिक पुरुष नहीं हुआ है तब यह शालिवाहन कौन था ? डाक्टर भंडारकर ने इस विषय को लिया है। उन्होंने सिद्ध किया है कि अन्ध्रभृत्यवंश नरेशों की उपाधि शातिवाहन थी और प्राकृत व्याकरण द्वारा शातिवाहन शालिवाहन हो सकता है अतएव यह शालिवाहन अन्ध्रभृत्य वंशीय था । इस वंश के दक्षिण पर कतिपय आक्रमण हुए थे पर यहां पर यह सिद्ध करना दुष्कर है कि अन्ध्रभृत्यों में ऐसा कौन सम्राट् हुआ जिसने दक्षिण पर आक्रमण कर उस कौशल-वंश का नाश किया ।

अस्तु, यह जनोक्ति केवल प्रलाप नहीं है । इस में कुछ ऐतिहासिक सार है जिस का सम्बन्ध सीसोदिया वंश से है । अब राजस्थानके इतिहास पर दृष्टि डालिये।

पठानों के समय में इस वंश में शिवरामजी हुए। इन के तीन पुत्र थे। मुसलमानों के अत्याचार से दो पुत्र वीरगति को प्राप्त हुए। कनिष्ठ भीम सिंह पिता के पश्चात् सिंहासनासीन हुए। इनके बाद इन का पुत्र विजयभानु असीम पराक्रमशाली राजा हुआ। इन्होंने प्रायः अपना समस्त जीवन यवनों के साथ युद्ध करने में ही व्यतीत किया था। विजयभानु की मृत्यु के पश्चात् कर्णखेल सिंहासन पर बैठे। इस नवीन राजा के समय में मुसलमानों के अनेकानेक आक्रमण हुए। निरन्तर आक्रमणों के कारण कर्णखेल शिथिल तथा अशक्त होगये। उन्हें राजस्थान त्यागना पड़ा। राजपूताना सर्वदा के लिये छोड़ कर्णखेल दौलताबाद के निकटस्थ वेरुला नामक ग्राम के 'भोंसले' दुर्ग में जा बसे। तभी से इनके वंशज भोंसले कहलाने लगे और क्रमशः भोंसला-कुल प्रतिष्ठित हुआ॥। कर्णखेल के पुत्र जयकरण और उनके पुत्र महाकरण हुए। महाकरण शत्रुओं से युद्ध करते २ परमधाम सिधारे। महाकरण की मृत्यु से वेरुल ग्राम में बड़ी हलचल मच गई। प्यारे पुत्र शिवभीम ने पितृ-शोकाकुल हो अपने प्राण विसर्जन कर दिये। शम्भाजी इन्हीं

॥ अब भी यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है कि शिवाजी क्षत्रिय थे या शूद्र थे परन्तु उपर्युक्त वंशावली से शिवाजी क्षत्रिय सिद्ध होते हैं। इस प्रश्न का पूरा निर्णय आगे मिलेगा।

के पुत्र थे। इन का जन्म सन् १५३१ में हुआ था।

इस वंश का पूर्ण इतिहास दुष्प्राप्य है। नामों को छोड़ घटनाओं का वृत्तान्त बहुत ही कम मिलता है। जिस समय शम्भा जी का जन्म हुआ था उस समय उन के पास नाममात्र के लिये तीन चार ग्राम थे। यही इन की स्थावर सम्पत्ति थी। ये लोग सामान्यतया अपना कालक्षेप करते थे। ये स्थापित-राज्य-शासन में कभी भी हस्ताक्षेप नहीं करते थे। इन की उपाधि इस समय पटेल थी। शम्भा जी भोंसले के दो पुत्र थे। ज्येष्ठ का नाम मल्ल जी था और छोटे का विटोजी था। मल्ल जी का जन्म सन् १५५२ ई० में हुआ था। मल्ल जी का विवाह बाल्यावस्था में ही फुलटन के देशमुख वङ्ग जी की भगिनी दीपबाई से हो गया था। कहते हैं कि शाह शरीफ़ नामक एक मुसलमान साधु के आशीर्वाद से मल्ल जी को पुत्ररत्न-लाभ हुआ। यवनानुभाव से पुत्र पा कर उन्हों ने कृतज्ञता का परिचय दिया। सन् १५९४ में पुत्र उत्पन्न होने पर मल्ल जी ने उस का नाम शाह जी रक्खा। देवकृपा से अल्पकाल में दीपबाई ने द्वितीय गर्भ धारण किया और यथासमय पुत्र उत्पन्न हुआ। इस बार मल्ल जी ने इस का नाम शरीफ जी रक्खा। ज्येष्ठ शाह जी कालान्तर में शिवाजी के पूजनीय पिता हुए।

चतुर्थ परिच्छेद ।

जन्म ।

शाह जी की बाल्यावस्था निरर्थक खेल कूद में व्यतीत न हुई । वे क्षात्र-धर्म्मानुसार शस्त्र-विद्यानुरागी हुए और अल्पकाल में शस्त्र-विद्या में अच्छी कुशलता प्राप्त कर ली । बालकपन से ही शाह जी कुशाग्र-बुद्धि थे । उन का शरीर सुन्दर एवं पुष्ट था । चाल ढाल में वे सामयिक शिक्षा का अनुकरण करते थे । इन दिनों लुक जी यादव की महती वृद्धि हो रही थी । किसी २ की राय है कि उस समय लुक जी की समता का कोई भी शक्तिमान् तथा धनवान् नहीं था । मुसलमान-नरेशों में भी इन का मान था । इन के द्वारा अनेक महाराष्ट्र सरदारों ने उन्नति प्राप्त की थी । सन् १५९९ में जब शाह जी पांच वर्ष के थे मल्ल जी उन को ले कर लुकजी के यहां होली मनाने को गये । यादवराव बालक शाह जी की वाक्पटुता तथा शारीरिक ओज देख कर परम प्रसन्नता प्रकट की और उस को अपनी गोद में बिठला लिया । इसी अन्तर में लुक जी की कन्या जीजी-बाई वहां आ गई । यादव राव ने उसको भी एक ओर गोद में बिठला लिया । बालस्वभाव से दोनों प्रेम

पूर्वक खेलने लगे। प्रेम का आधिक्य देख यादवराव परमानन्दित हुए और हंसते २ कहा 'जीजी ! तू इस के साथ विवाह करेगी' ? बालक बालिका विवाह के मर्म को क्या जानें अतएव वे उसको हंसी की बात समझ कर हंसने लगे और हंसते २ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर उठ बैठे। यादवराव ने विकसित मुख से कहा 'क्या ही सुन्दर जोड़ी है' ? उपस्थित सज्जनों के सम्मुख मल्ल जी उठ कर कहने लगे 'महाशयो! यादवराव विवाह सम्बन्ध दृढ़ कर रहे हैं। उन को अपनी बात पर अटल रहना चाहिये।' यादवराव के सिर पर वज्र गिरा। मल्ल जी की बात सुन कर वे नितान्त घबरा गये और सभा विसर्जित हुई।

द्वितीय दिवस मल्ल जी के यहां पुनः निमन्त्रण गया पर उन्हों ने यह कह कर लौटा दिया कि जब तक यादवराव शाह जी को जामाता बनाना स्वीकार नहीं करेंगे हम उन का निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सकते हैं। यादवराव की स्त्री ने जब यह सुना तो परम क्रोधित हुई। क्रोध का कारण यह था कि यादव-राव अपने को राजवंशीय समझते थे और साथ ही साथ उस समय उन की मानमर्य्यादा बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी अतएव उन्हों ने अभिमान से सामान्य दशा के मल्लजी

से सम्बन्ध करना अनुचित विचारा। इस में किञ्चित्-मात्र भी सन्देह नहीं कि मल्ल जी यादवराव की समानता करने के तुल्य नहीं थे। राज्य-कार्यों में प्रवेश कर यद्यपि उन्हों ने क्रमशः अपनी पदोन्नति की थी पर वह अंत में सिलीदार ही थे। अपरिमित धन-मान-युक्त यादवराव भला क्यों कर एक सामान्य सिलीदार-पुत्र को अपना जामाता बनाते? मल्ल जी का निमंत्रणोत्तर सर्वथा अपमान-सूचक था अतएव यादवराव-पत्नी ने ऐसे उत्तर की घोर निन्दा की और मल्ल जी से कहला भेजा कि 'तुम स्वप्न में भी ऐसी कल्पना न करना'।

मल्ल जी ऐसा उत्तर पाकर परम लज्जित हुए। अब उन्होंने विचार किया कि यादवराव यदि यादव वंश के हैं तो मैं भी सूर्य्यवंशीय हूं। बात केवल इतनी ही थी कि इस समय उनके पास असीम धन एवं मान है। धन के ही कारण तो वे मुझे तुच्छ समझ रहे हैं तो आज से मैं अपने जीवन का धनोपार्जन ही उद्देश्य समझूंगा। अतुलित धन प्राप्त होने पर ही यादवराव मेरे समधी अवश्य होंगे अतएव अब मैं धन-मन्त्र की साधना में अपना शरीर अर्पित कर दूंगा। ऐसा विचार कर मल्ल जी ने नौकरी छोड़ दी और भवानी की आराधना में दत्तचित्त हुए। अकस्मात् इनको बहुत सा धन प्राप्त हो गया। कहा जाता

है कि यह जगज्जननी भवानी ने ही प्रदान किया था। स्वप्नावस्था में आविर्भूत हो धन-प्राप्ति के निमित्त आदेश दे एक वार यह भी कहा था कि तेरे वंश को उज्ज्वल करने वाला शम्भु सदृश् दीप्तिमान् वालक उत्पन्न होगा। उस गुणशाली पुत्र द्वारा हिन्दूराष्ट्र-वालरवि एक वार पुनः उदय होगा। गो-ब्राह्मण-कण्टक निर्म्मूल हो कर दूर होंगे। उस के उत्थान से हिन्दू-भाग्य-गति पलट जायगी और उस के पश्चात् सत्ताईस हिन्दू राजा राज्य करेंगे। इतना कह देवी अन्तर्हित हो गई।

अस्तु, जो कुछ भी हो मल्ल जी को प्रचुर धन मिल गया। धन के कुछ भाग को धर्म्म-कार्य्य में व्यय कर बचे हुए धन से मनुष्य और अश्व संग्रह करना आरम्भ किया। उन को अभी लुक जी का अपमान विस्मृत नहीं हुआ था। किसी न किसी प्रकार से उन्हों ने यादव राव को नीचा दिखलाना चाहा। उन को अकस्मात् अवसर प्राप्त हो गया था। प्रवल मुग़ल सम्राट् अकबरशाह दिल्ली के सिंहासन पर शोभायमान थे। मुग़लों का परम प्रचण्ड प्रताप अब तक इन्हीं के समय में समस्त भारत भूमि में प्रसरित हुआ था। देशपति, नरपति एवं प्रजाधिपति अपनी स्वाधीनता के गौरव को दिल्लीश्वर को समर्पित करते जाते थे। केवल एक हिन्दू-कुल-तिलक वापारावल वंशोद्भव

महाराणा प्रताप सिंह अपरिमित नर-रक्त-दान से मेवाड़ की स्वाधीनता रक्खे हुए थे। उत्तरीय हिन्दुस्तान को नीति-पाश-बद्ध कर दक्षिण की ओर उसने दृष्टि डाली। अकबर शाह ने इस से कुछ काल पूर्व ‡ खानदेश का राज्य जीत लिया था पर व्यतिक्रमों से आगे पैर न बढ़ा सके। अकबर शाह इस बात से भली भांति परिचित थे कि जो मनुष्य दक्षिण को वश में रखना चाहता है उस को दक्षिण में हीं राजधानी रखनी उचित है। राजपूताने को दबाये रखने के निमित्त उसने आगरे को राजधानी बनाया था। पर उसके लिये दक्षिण में राजधानी बनाना कठिन था कारण यह कि उसकी अनुपस्थिति में राजपूताना हलचल मचा देता। दक्षिण की ओर पूर्णतया दृष्टि उसने जब डाली जब उसने राजपूताना को वशीभूत कर लिया। किसी२ का यह मत है कि वह दक्षिण में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। अपनी सीमा दृढ़ करने के निमित्त ख़ानदेश को ले लिया था § पर यह बात सर्वथा सिद्ध नहीं। यदि उसने दक्षिण में हस्तक्षेप नहीं किया था तो उसके कारण उत्तर के झगड़े थे। उनके कारण वह अक्षम सा हो रहा

‡ १५९२ ई० में

§ Lane-Pooli's Aurangzeb p. 144.

था। उन से जैसे ही छुट्टी मिली वह दक्षिण पर चढ़ दौड़ा। मुग़ल राज्य के दक्षिणीय सूबा का सूबेदार शाहज़ादा मुराद बनाया गया। दक्षिण-विजय-निमित्त भौगोलिक कारणों से मुग़लों को प्रथम अहमदनगर पर आक्रमण करना पड़ा।

अहम्मदनगर की इस समय आभ्यन्तरिक अवस्था अत्यन्त शोचनीया थी। विलासप्रियता के कारण नवाब का सर्वनाश हो रहा था। राज्यकोष द्रव्यहीन था, देश में धन एवं अन्न का पूर्ण अभाव था। सेना की दशा भी विचारणीय हो रही थी। ऐसी दुरवस्था में मुग़लों ने अहमद-नगर पर आक्रमण किया। स्वल्प यत्न से अहमदनगर का पतन हुआ और नवाब चल बसे। एक बार मुग़लों का देश पर आधिपत्य हो गया। वीराङ्गना चांदबीबी से न सहा गया। वह मुग़लों के निकालने के लिये कटिबद्ध हुई। उमरावों की सहायता द्वारा उस ने मुग़ल सेना को पराजित कर उन को बहिष्कृत कर दिया। स्त्री का यह भीम कर्म उमरावों को असह्य हुआ और उन्हों ने एक गुप्त मंत्रणा कर इस स्वदेशभक्ता वीराङ्गना का प्राण हरण कर लिया। इधर मुराद की मृत्यु के पश्चात् दानयाल दक्षिण का सूबेदार हुआ। मुग़लों ने अहमद-नगर का पीछा न छोड़ा। इस बार स्वयं अकबर शाह

दक्षिण में आये। दुर्धर्ष अकबर को अहमदनगर में चांदबीबी की तरह कोई रोकने वाला न था अतएव अहमदनगर का पतन हुआ और नवाब बुरहानपुर को बन्दी कर भेज दिये गये पर उन के वंश वालों ने अधीनता स्वीकार न की और मलिक अम्बर की सहायता से प्राचीन निजामशाही वंश से एक बालक को ले कर जूनार को राजधानी बनाया।

उपर्युक्त युद्ध समय में ही मल्ल जी का भाग्योदय हुआ। उस कठिन समय को देख कर मल्ल जी ने विचारा कि यदि इस प्राप्त प्रभूत धन को उचित उपयोग में ला सकूं तो कार्य्य-सिद्धि में विलम्ब नहीं। अहमदनगर की आन्तरिक अवस्था उन से छिपी हुई नहीं थी। वे जानते थे कि नवाब को धन-जन की परम आवश्यकता है अतएव उन्हों ने पांच सहस्र अश्वारोही जमा कर नवाब को मनुष्य तथा धन से सहायता करनी विचारी। गत युद्धों के कारण देश में घोर दुर्भिक्ष उपस्थित था। केवल अन्न ही से नहीं किन्तु जलाभाव से भी प्रजा अतीव कष्ट में थी। जलाभाव को दूर करने के लिये मल्ल जी ने इधर उधर ग्रामों में वापी कूप तड़ागादि बनवा दिये। इतना ही नहीं किन्तु देवमन्दिरादि की भी प्रतिष्ठा कर मल्ल जी ने सुख्याति प्राप्त की। और उनका नाम कुछ

ही समय में देशव्याप्त हो गया। नवाब ने भी सामयिक सहायता लाभ कर अपनी परम प्रसन्नता प्रकट की। सहायता के बदले में नवाब ने मल्ल जी को चाकन तथा शिवनेर दुर्ग प्रदान किये और जागीर में पूना तथा सूपा नामक ग्राम दे डाले। नवाब की कृपा का अन्त यहीं न हुआ उन्होंने मल्लजी को 'राजा मल्लजी भोंसले' की उपाधि से विभूषित किया। राजा मल्ल जी भोंसले अब उपाधिहीन, सामान्य तथा द्रव्यहीन सिलीदार मल्ल जी अब नहीं थे। उन के अपरिमित धर्मार्थ दान के प्रचण्ड प्रकाश में यादव राव की ख्याति नक्षत्रवत् हो गई। ऐसा समय पाकर मल्लजी ने किसी प्रकार से नवाब के कानों तक अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करवा दी। नवाब ने यादव राव को बुला कर विवाह का अनुरोध किया और अब लुकजी ने विवाह-सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार कर लिया। शुभलग्न तथा मुहूर्त्त में महान् समारोह के साथ शाह जी का जीजीबाई के साथ सन् १६०४ में पाणिग्रहण होगया *।

सन् १६२० ई० में मल्लजी ने इस असार संसार को त्यागा। शाहजी उत्तराधिकारी हुए। युद्ध-विद्या-कुशल शाहजी जागीर के कामों को भी पूर्ण दक्षता से सम्पादन करते थे। उन की प्रजा उन से सर्वदा परम प्रसन्न

---

* मराठा बखर।

रहती थी और वे भी उस को सुखी रखने के लिये प्राणपण से चेष्टा करते थे। पिता के वैकुण्ठवासोपरान्त शाहजी भी अहमदनगर की सहायता में रहे। अकबर शाह अब इस संसार में नहीं थे उन के पुत्र जहांगीर-शाह दिल्ली के सिंहासन को सुशोभित कर रहे थे। जहांगीर ने सन् १६१६ ई० में शाहजहां को अहमदनगर-विजय के लिये भेजा पर मलिक अम्बर तथा शाहजी के कारण शाहजहां को कई वार पीछे हटना पड़ा §। सन् १६२० ई० में पुनः घोर मुग़लाक्रमण हुआ। इस वार अहमदनगर की सहायता में निम्बालकर, लुकजी तथा शाहजी थे। युद्ध हुआ पर मुसलमानों की अविचारिता के कारण अहमदनगर की पराजय हुई। लुकजी मुग़लों की ओर चले गये और मलिक अम्बर को भी आत्म-समर्पण करना पड़ा। इस युद्ध में महाराष्ट्र-सैन्य तथा शाह जी की बड़ी प्रशंसा हुई।

इस के पश्चात् मलिक अम्बर ने एक वार पुनः अहमदनगर-राज्य-स्थापन की चेष्टा की थी पर सन् १६२६ ई० में मर गया और उस की आशा उस के साथ चली गई। टामसन का मत है कि उस की मृत्यु सन् १६२९ ई० में हुई थी।

मलिक अम्बर की मृत्यु के एक वर्ष बाद शिवनेर दुर्ग में जीजीबाई के गर्भ से शिवाजी का जन्म हुआ।

---

§ Vide Thomson history p. 178.

पञ्चम परिच्छेद ।

बाल्यकाल।

उद्दण्ड यवनों के हस्तगत हुई भारत भूमि के पुन-रुद्धार-कर्त्ता शिवाजी का जन्म शिवनेर नामक दुर्ग में सन् १६२८ ई० (१६८४ सम्वत्) के वैशाख मास के शुक्ल पक्ष द्वितीया वृहस्पति वार को जीजीबाई के गर्भ से हुआ था।

जीजीबाई इस दुर्ग में बन्दी हो कर वास करती थीं। हम गत परिच्छेद में लिख आये हैं कि निज़ाम-शाही के पतन होने पर लुक जी मुग़लों की ओर चले गये थे। शाहजी धर्म्म-पथ का त्यार्ग न कर अहमदनगर का पक्ष ग्रहण किये रहे। अहमदनगर में यह समय बड़ा कराल था। अशान्ति देवी अपने प्रिय सहचर युद्ध देव को साथ ले कर उग्र भीषणता धारण किये हुए थी। कराल-काल-दंष्ट्रा नर-रक्त-रञ्जित हो रहीं थीं। जिधर देखो उधर ही युद्धानल प्रज्वलित हो रहा था। प्रायः ऐसा कोई दिवस नहीं जाता था जिस दिन लड़ाई न होती हो। ऐसी अवस्था में ससुर व दामाद की प्रायः मुठभेड़ हो जाती थी। सन् १६२६ ई० में ससुर दामाद का अच्छा ख़ासा सामना हो गया। शाहजी के

साथ इस समय उन के ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी* तथा वीरपत्नी जीजीबाई थीं। जीजीबाई के सात मास का गर्भ था। कठोर गर्भ तथा युद्ध क्षेत्र के भीषण दुःख जीजी को चिन्ताग्रस्त किये हुए थे। शाहजी इस समय घोर संकट में थे पर अटल हृदय शाहजी किञ्चिन्मात्र भी इस से विचलित न हुए। युद्ध हुआ और दुर्भाग्यवश शाहजी हारे। शाहजी के सैनिकों ने पीठ दिखाई! लुकजी ने तड़ितगति से शाहजी का पीछा किया। विषम विपत्ति-जनक दुर्गम पर्वतमय पथोल्लंघन कठोरगर्भा जीजी को असम्भव प्रतीत होने लगा। प्रिय पत्नी के मुख कमल पर यन्त्रणा के लक्षण दिखलाई देने लगे। शाहजी ने देखा कि अब अग्रसर होना मनुष्य-शक्ति के बाहर है अतएव जीजी को वहीं छोड़ देने का विचार किया। उन्होंने विचारा कि अन्त को लुकजी जीजी के पिता ही हैं, विपक्षदल के होने के कारण उन की शत्रुता तो मुझ से है न कि जीजी से। वह तो उन की ही पुत्री है अतएव उन के हाथ में पड़ने से उस की अ-

---

* शिवाजी के बड़े भाई का नाम शम्भाजी था। ये इन से तीन चार वर्ष बड़े थे। इतिहास से शम्भा जी का सम्बन्ध घनिष्ट नहीं है अतएव इन का उल्लेख कम होगा।

निष्ट सम्भावना नहीं हो सकती। पत्नी पर भी तद्विषयक विचार प्रकट कर उसको वहीं छोड़ कर दूर तगलिये शाहजी निरापद् स्थान में पहुंच गये।

सवेग लुकजी जहां जीजीवाई कुछ विश्वस्त सैनिकों की रक्षा में थीं आ गये। जीजीवाई उन के हाथ पड़ीं। अपत्य-स्नेह को तिलाञ्जलि दे लुकजी ने उस को शत्रु-पत्नी विचारा। पितृ-स्नेह-चिन्हों को विलुप्त कर अपनी कन्या को वन्दी कर शिवनेर दुर्ग में भेज दिया। शाहजी ने जब सुना कि जीजीवाई शिवनेर दुर्ग में है उन्हों ने यादवराव को उस को भेज देने को लिखा पर उन्हों ने साफ़ नाहीं कर दी *। जीजीवाई शिवनेर दुर्ग में वन्दी रहीं और यहीं दो मास के वाद शिवा जी को जन्म दिया। जिस समय से जीजी यहां आईं थीं उन्हों ने शिवाई देवी की, जो इस दुर्ग की अधिष्ठात्री देवी थीं, आराधना में अपना समय बिताने लगीं। सती शाहजी-

---

* इस नाहीं के दो कारण हो सकते हैं—प्रथम तो यह कि लुकजी मुग़ल सैन्य के सेनानी थे और जीजी को उन्हों ने युद्ध में वन्दी किया था अतएव विना मुग़ल सम्राट् की आज्ञा के जीजी को छोड़ देना अनुचित विचारा और इस प्रकार से अपनी निमक हलाली का परिचय दिया। द्वितीय यह केवल ईर्षा का फल था।

पत्नी, पति तथा भविष्य-सन्तान की शुभ कामना के लिये तन मन से देव्यर्चन करती थीं। उन की महती प्रार्थना यह थी 'देवि! महावीर पुत्र को प्रसव कर मैं वीरसू होऊं।' कहते हैं कि देवी ने प्रसन्न होकर जीजीबाई से स्वप्न में कहा पुत्री मैं तेरी भक्ति-अर्चन से परम प्रसन्न हूं। तेरे गर्भ में भूभार उतारने के निमित्त देवाधिदेव भगवान् भूतभावन शिवजी ने शरीर धारण किया है। तेरा पुत्र गो-ब्राह्मण की रक्षा करते हुए शत्रु का नाश करेगा। महाराष्ट्र-मेदिनी में हिन्दू-राज्य स्थापित कर अतुलित यश का भागी होगा। तू भी शिव-माता हो कर महती ख्याति की अधिकारिणी होगी। देववाणी से प्रफुल्लित जीजी-बाई का स्वप्नभङ्ग हुआ और यथा समय वाञ्छित पुत्र-रत्न को जन्म दिया। जिस पुत्र के प्रकाण्ड एवं प्रशस्त कर्म भूमण्डल के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से अङ्कित किये जाने के योग्य हैं, जिसने परम-प्रचण्ड-प्रताप-प्रतापित दुर्धर्ष यवनों के राज्य को छिन्न भिन्न कर रसातल पहुंचा दिया, जिस महाराष्ट्रकेशरी ने भारतवर्ष में पूर्ण देश-भक्ति का परिचय दिया उस सन्तान-मौलि-मणि का नाम शिवाई के आशीर्वाद के कारण शिवाजी रक्खा गया।

इस समय दक्षिण की क्या अवस्था थी? देशभक्त मलिक अम्बर इस क्षुद्र संसार में नहीं था। पिता के स्थान पर उस का पुत्र फ़तह खां काम करने लगा। निज़ामशाही नौका को ले कर विषम समय में वह केवट बना परन्तु यह अपने पिता की तरह सुचतुर और कार्य्य-दक्ष न था। खांजहां लोदी * निरन्तर निज़ामशाही को ग्रसने का यत्न कर रहा था। सुलतान मुर्त्तिज़ा ने, जो अब तक अल्पवयस्क थे, पूर्णायु को प्राप्त कर राज्य-डोर अपने हाथ में ली। लुकजी यादव का विपक्ष में चला जाना उस को अत्यन्त बुरा लगा था। उस से अधिक बुरा यह लगा था कि विपक्ष में जा कर वह निज़ामशाही-राज्यमूल को उच्छेद करने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा था जिसने उस के निमित्त बहुत कुछ किया था। निदान उसने अब इस कृतघ्नता का प्रतिशोध करने का विचार किया। सन् १३१० ई० में उसने फ़तहखां को राजप्रतिनिधि-पद से च्युत कर लुकजी को भुलावा दे कर पद-प्रदान की प्रतिज्ञा से बुला भेजा। नवाब की भीतरी चाल को न समझ कर लुकजी वहां चले आये। वहीं गर्भवती पतिपरायणा पुत्री के बंदी करने का प्रायश्चित्त हुआ। लुकजी को अपने पाशबन्ध में डाल,

* यह सेनापति मुगलों की ओर से नियत किया गया था।

नवाब ने लुकजी के प्राण हरण किये । इस प्रकार शिवाजी के नाना का अन्त हुआ। बुद्धिमती यादवराव-पत्नी अपने प्राणों को बचा कर सिन्धखेर भाग गईं । इधर फ़तहख़ां ने मौक़ा पा कर नवाब को मार डाला ।

उधर दिल्ली के सिंहासन पर जहांगीर के पुत्र शाह-जहां आसीन हुए । ख़ांजहां लोदी सम्राट् जहांगीर का कृपापात्र तथा स्वयं वीर होने के कारण दक्षिण * का सूबेदार नियुक्त किया गया परन्तु शाहजहां का इससे आन्तरिक वैमनस्य था । वह सर्वदा उसके पराभव की चेष्टा करता था पर जब तक जहांगीर जीवित रहे शाहजहां ख़ांजहां का बाल भी बांका न कर सका। जैसे ही शाह-जहां दिल्लीश्वर हुए उन की वक्रदृष्टि लोदी की ओर फिरी । निस्सहाय इस समय क्या कर सकता था। शाह-जहां ने उसे दक्षिण से हटा कर मालवा का सूबेदार बनाया और पीछे ऊपर से मान दिखलाते हुए उस को दिल्ली बुलाया । उच्चासनासीन कर उस की प्रतिष्ठा बढ़ाई पर साथ ही साथ उस के प्राणापहरण की तरकीब

---

* 'दक्षिण' शब्द का तात्पर्य यहां दक्षिण देश से नहीं है । दक्षिण का मतलब यही है कि दक्षिण देश का वह भाग जो मुग़ल राज्यान्तर्गत था अर्थात् ख़ानदेश का एक बड़ा भाग, बरार, तथा अहमदनगर का दुर्ग । यही इतना मुग़लों का दक्षिण का सूबा था । (लेनपूल)

सोची * न मालूम ख़ांजहां के हृदयमें क्या शक गया यह वहांसे बिना कहे सुने भाग खड़ा हुआ। आत्मरक्षा-निमित्त उस ने निज़ामशाही की शरण ली †। फतहखां के समय में निज़ामशाही का पूर्ण नाश जान कर शाह जी भी मुग़लों की ओर चले गये थे ‡ पर जब उन्हों ने नवाब मुर्त्तिज़ा की मृत्यु का हाल सुना तो वे पुनः अपने प्राचीन राज्य में चले आये और नवीन नवाब को सिंहासन पर बिठला कर पश्चात्काल के अब्दुल्लाखां बने। शाहजहां ने जब दक्षिण का समस्त ब्यौरा सुना तो उन्हों ने खां-जहां के वापिस कर देने का आज्ञा-पत्र निकाला परन्तु उस में कुछ भी सफलता प्राप्त न हुई। समस्त निज़ाम-शाही उस की रक्षा के लिये उद्यत हो गया। शाह जी ने भी मुंह न मोड़ा।

---

* शाहजहां की प्रायः यह चाल हुआ करती थी कि जिस के वह प्राण लिया चाहता था तो पहले उस पर अपनी असीम कृपा दिखलाता था और पश्चात् उस के प्राण ले लेता था। इसी प्रकार उसने एक युवा को जिसके ऊपर यह सन्देह था कि उसका जहान आरा से कुछ अनुचित सम्बन्ध है पान में विष दे कर मारा था।

बर्नियर का भारतीय-भ्रमण।

† यलफिन्स्टन्स हिस्ट्री आफ इण्डिया।

‡ रानाडे रचित 'महाराष्ट्रों का अभ्युदय।

मुग़लों से घोर युद्ध हुआ पर निज़ामशाही का सौभाग्य सूर्य अस्त हो गया था। मुग़लों की इन दो तीन वर्षों की चेष्टाएँ विफल न हुईं। उन की पूर्ण विजय हुई और सन् १६३७ में निज़ामशाही का नाम इतिहास से चिरकाल के लिये विलीन हो गया। लुकजी की मृत्यु के पश्चात् जीजीबाई स्वतन्त्र हो गईं थीं। उपर्युक्त मुग़ल-युद्ध काल में भी जीजी को पूर्ववत् कष्ट सहन करने पड़े थे। इन युद्धों में भी एक समय शाह जी पर बड़ी भारी विपत्ति पड़ गई थी। महलदारखां नाम का एक मुसलमान अधिकारी अरबक दुर्ग का अधिपति था। उसने मुग़ल सेनापति से मन्त्रणा कर जीजीबाई को पकड़ा दिया। शाह जी को इन के छुड़ाने में बड़ी कठिनता हुई थी पर येन केन प्रकारेण सफलीभूत हुए। जीजी का उद्धार कर उन को शिशु शिवा जी सहित कुण्डाने के दुर्ग में भेज दिया। इन दिनों से कुछ पूर्व अर्थात् सन् १६३३ के निकट किन्हीं कारणों से उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया

---

* बीजापुर में इस समय नवाब मुहम्मदअली आदिल का समय था। इम्पीरियल गज़ेटियर में इस का नाम 'मुहम्मदशाह' लिखा है। उपर्युक्त नाम ग्रॅांट डफ् के इतिहास से ज्ञात हुआ है।

था ‡। जीजीबाई के हृदय में इस विवाह का महान् आघात लगा। वे एक प्रकार से शाहजी से विरक्त हो गईं और अपने प्यारे पुत्र शिवा को लेकर पृथक् रहने लगीं।

निजामशाही * के विनष्ट होने के बाद शाह जी आदिलशाही*में चले गये। वीर का सर्वत्र ही मान होता है अतएव बीजापुर में भी शाह जी की प्रतिष्ठा हुई। नूतन विवाहिता पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र शम्भा जी तथा जीजीबाई भी साथ में थीं पर जीजी ने वहां रहना पसन्द नहीं किया और शिवाजी को लेकर वे पूने में रहने लगीं। इधर बीजापुरके नवाब भी राज्य-सीमा-वर्द्धन में पूर्ण यत्न से लगे हुए थे। बीदर तथा बरार का बहुत बड़ा भाग उन्होंने अपने राज्य में जोड़ लिया था। इस समय कर्णाट देश में कुछ अराजकता थी अतएव शाह ने शाह जी को उपयुक्त समझ कर कर्णाट भेज दिया। कावेरी प्रदेश में पहुंच कर शाह जी ने एक नया राज्य अपने पुत्र शम्भा जी के लिये स्थापित किया।

---

‡ ससुराल से क्रोधित हो कर शाह जी ने यह विवाह किया था।

* निज़ामशाही अहमदनगर राज्य और अदिलशाही बीजापुर राज्य का नाम था।

बालक शिवाजी इस समय दसवें वर्ष में पदार्पण कर चुके थे। 'शैशव-काल ही में मुसलमानों द्वारा पीड़ित होने के कारण शिवाजी के हृदय में मुसलमानों की ओर से एक विशेष-घृणा उत्पन्न हो गई थी। शाहजी से शत्रुभाव रखने के कारण यवन जीजीबाई को बड़ा दिक़ किया करते थे। मौक़ा पाने पर शिवाजी को भी कष्ट पहुंचाने का यत्न करते थे पर जीजीबाई की कौशलमयी बुद्धि के प्रताप से हिन्दू-बाल-रवि को राहुग्रस्त होना नहीं पड़ा था। जीजी कभी उन को एक स्थान में छिपालीं। जब सन्देह हो जाता कि यवन इन का वास जान गये हैं तो अन्यत्र ले जातीं। इसी कारण मुसलमानों की अभीष्ट सिद्धि नहीं होती थी। ज्ञानोदय होने पर शिवाजी लुकने छिपने से उकता गये। वे प्रायः माता से पूछने लगते कि 'तुम रोज़ रोज़ यह क्या करती हो?' पहिले तो जीजी ने छिपाने का यत्न किया पर शिवाजी के निरन्तर आग्रह के कारण सच्ची अवस्था के कहने को लाचार हुईं। इस अवस्था का वर्णन और भविष्य के महाराष्ट्रीय-स्वतन्त्र-राज्य-स्थापन का श्रीगणेश साथ ही साथ हुआ।

जीजीबाई ने कहा—"बेटा! जिन दुष्टों से मैं तुम को अहर्निश छिपाये रखने का यत्न करती हूं उन विध-

र्नियों ने वस्तुतः समस्त भारतवर्ष का नाश कर दिया है। म्लेच्छों के कारण हिन्दुओं का हिन्दुत्व नाश हो रहा है। हाय ! गो ब्राह्मण त्राहि त्राहि करते हुए अनाथों की तरह पददलित हो रहे हैं। कर्म्मभूमि दक्षिण भी निस्तेज है। हिन्दुओं का रक्त अब ठंडा हो गया। उस की उष्णता अब शान्त हो गई है। परम प्राचीन हिन्दूधर्म्म की दुरवस्था कौन वर्णन कर सकता है। प्यारे शिवा ! अर्जुन, भीम सरीखे प्रबल योद्धाओं की कमी हो गई है नहीं तो क्या भारतभूमि इस प्रकार से रसातल को पहुंच जाती ? हा ! देखो कब विधर्म्मी यवनों से भारत का उद्धार होता है ?" ऐसी मार्म्मिक बातें जब २ जीजीबाई और शिवाजी पास बैठते तब हुआ करती थीं। कभी २ आवेश में आ कर शिवाजी बोल उठते 'माता ! देखो हम इन को मार भगावेंगे'। बालक की ऐसी वीरोचित वाणी सुन कर रोमाञ्चित जीजीबाई का हृदय गद्गद् हो जाता। प्राचीन स्वप्न याद कर बालक का मुख चूमती हुई वीरमाता आनन्दाश्रु बहाती हुई कहती थीं, 'शिवा ! शिवाई मेरे मनोरथ को पूर्ण करेगी'। थोड़े ही दिनों में शिवाजी यवनों के घोर विद्वेषी हो गये। इस के साथ ही साथ उन के हृदय में शिवाई देवी की अनन्य-भक्ति उत्पन्न हुई। इस छोटी सी अ-

वस्था से ही शिवाई भवानी के पूरे उपासक हो गये। कहते हैं कि शिवाजी ने इन देवी को सिद्ध कर लिया था। अस्तु, जो कुछ भी हो शिवाजी का भवानी पर पूर्ण विश्वास था। इस छोटी अवस्था में शिवाजी का विवाह निम्बालकर की पुत्री सुईबाई से हो गया।

पूना ग्राम जिस में शिवाजी अपनी माता सहित रहते थे निज़ामशाही की दी हुई उन की पैतृक जागीर थी। शाहजी इन जागीरों का काम बहुधा ब्राह्मणों द्वारा करवाते थे। इन में नारोपन्थ और दादा कोणदेव परम विश्वस्त थे। नारोपन्थ तो कर्णाट की जागीर पर काम करते थे और दादा जी पूना में रहते थे। दादा जी आधुनिक पूना नगर के मालथान नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे। अच्छे विद्वान् होने के सिवाय दादा जागीर के कामों में निपुण थे अतएव शाह जी ने इन को अपने यहां रख लिया था। शिवाजी जब पूना भेजे गये तो शिवाजी का रक्षणभार इन्हीं के सिर पड़ा। दादा परम बुद्धिमान् थे। उन्हों ने शिवाजी में कुछ अपूर्व लक्षण देखे। उन लक्षणों को सार्थक करने के निमित्त दादाजी ने शिवाजी की ओर बहुत ध्यान रक्खा। बहुत कुछ समझ बूझ कर दादा ने उन को वीरशिक्षा से शिक्षित किया। यद्यपि शिवाजी शास्त्रों से अनभिज्ञ रहे पर निज

वंश-परम्परा की शस्त्रविद्या-विज्ञता पूर्ण की। उस समय महाराष्ट्रों में विद्याध्ययन की चर्चा बहुत कम थी। ब्राह्मण तो विद्याप्रिय होते थे पर और लोग अन्य विषयों में कुशल होने की इच्छा रखते थे। महाराष्ट्र के बहुधा मनुष्य या तो उस समय कृषक थे या युद्धविद्या-सेवी थे। शिवाजी आजन्म अपने हस्ताक्षर करने में असमर्थ रहे पर ईश्वर को तो उन्हें अन्य विषय में समर्थ करना था। बालकपन ही से शिवाजी का लक्ष्य-वेध ऐसा बढ़िया होता था कि बड़े २ तीरन्दाज़ चक-राते थे। असि-चालन के तो शिवाजी अपने समय के असि-गुरु कहलाने के योग्य थे। अश्वारोहण में भी उस प्रान्त में कोई भी उन की बराबरी नहीं कर सकता था। यह सब दादा जी की ही कृपा का फल था।

शिवाजी को पहाड़ियों पर घूमने का बड़ा ही शौक़ था। वे जब अवकाश पाते तो चट भाग कर कन्द-राओं और गुफ़ाओं की सैर करते। कभी २ घूमने में इतने मस्त रहते कि लौटने में अतिकाल हो जाता। जब इस प्रकार से शिवाजी को लौटने में देर होती तो माता जीजीबाई घबड़ा उठतीं। ऐसा देख कर दादाजी ने शिवाजी को देर तक घूमने से रोका पर मौक़ा पाते ही शिवाजी पुनः जङ्गलों में पहुंच कर उस का आनन्द

लूटते। दादा जी भी अब कुछ सोच समझ कर शिवा जी को घूमने का अवसर देने लगे। उन्हों ने शिवा जी की प्रकृति पर ध्यान दिया और तत्पश्चात् उस प्रकृति की भविष्योन्नति पर भी ग़ौर कर शिवा जी की इच्छा में अड़चन न डाली। शिवाजी आस पास के पहाड़ी देश से खूब ही परिचित हो गये। ऐसी कोई गुफ़ा एवं कन्दरा न रह गई थी जिस को शिवा जी ने न देखा हो।

इधर दादा जी की युद्ध-शिक्षा भी समाप्त हो आई थी। व्यूह-रचना पर उन्हों ने अधिक ज़ोर दिया था। शिवा जी के बाल्यकाल के अद्भुत कर्मों को देख कर दादा जी कह उठते "जीजी! तू इस शिवा के कारण संसार में बहुत कुछ यश लाभ करेगी। ईश्वर इस को चिरञ्जीव रक्खे।" विज्ञ बूढ़े का यह आशीर्वाद जननी जीजी के चक्षुओं से आनन्दाश्रु टपकाता था। शिवाजी युद्ध-विद्या-विशारद होने के साथ ही साथ जागीर सम्बन्धी कामों को भी सीखने लगे। राज्य-सञ्चालन-प्रणाली का बीज यहीं बोया गया। दादा जी ने शिवा जी को पुस्तक-शिक्षा से वञ्चित रक्खा था। उन्हों ने शिवा जी को वह शिक्षा दी थी कि जो कार्य्य-काल-समुत्पन्न होने पर काम में आ सके। धार्म्मिक शिक्षा के लिये दादा जी ने सुयोग्य पण्डित रख लिये थे जो अवकाश के

समय शिवाजी को रामायण तथा महाभारतादि सुनाते थे। थोड़े ही दिनों में उन को इन पुस्तकों से ऐसा प्रेम हो गया कि जहां कहीं सुनते कि आज अमुक स्थान पर कथा होगी तो मीलों चल कर शिवाजी उक्त स्थान पर पहुंचते थे। धार्म्मिक शिक्षा जो बाल्यकाल से आरम्भ हुई थी मृत्यु-शय्या-पर्य्यन्त उस ने अपना प्रभाव न छोड़ा। शिवाजी का जीवन धर्म्ममय जीवन था। धर्म्म ही को लेकर शिवाजी उठे थे। धर्म्म ही के लिये अनेकों वार अपने प्राणों को संकट में डाला था। धर्म्म ही उन का एक मूल साधन था।

धार्म्मिक कथाओं का प्रभाव उन पर इतना पड़ा था कि उन को सुन कभी २ वे रो उठते थे। उत्तेजक कथाओं को श्रवण कर उन के भुजदण्ड फड़कने लगते थे। हिन्दू-धर्म्म के रक्षकों का इतिहास सुन अर्वाचीन भारत की दशा पर आंसू बहाने लगते थे। ध्यानमग्न होकर विचार में पड़ कर शिवाजी विचारते थे कि क्या कभी ऐसा सुअवसर प्राप्त होगा कि जब हम भारत का अभ्युदय देख कर नेत्रों को सफल करेंगे? क्या कभी हम भी इस योग्य होंगे कि विधर्म्मी यवनों को ध्वस्त कर पवित्र भारत भूमि का उद्धार कर सकेंगे? देखें कब हिन्दू-राज्य स्थापित हो। हिन्दूओं की आर्त्तदशा पर वि-

चार करते हुए शिवाजी के ओष्ठ कांपने लगते थे। वीर-आवेश में वे सोचते थे कि देखें वह कौनसा युद्ध क्षेत्र होगा जहां मैं उद्दण्ड यवनों का रक्त बहा कर अपनी तृष्णा को बुझाउंगा। हा वह कौनसी घड़ी होगी जब मैं अपने पूर्व पुरुषों के दुःख मिटाने के लिये मुसलमानों के रक्त से पितृतर्पण कर उन की इच्छाओं को पूर्ण करूंगा। जब तक जननी जन्मभूमि का उद्धार न कर लूं तब तक मेरे आनन्द से समय व्यतीत करने को सहस्र वार धिक्कार है। सोते जागते इस भावी महावीर को यही धुन सवार रहती थी। यदा कदा स्वप्न में भी शिवाजी भारत-रक्षा के लिये चिल्ला उठते थे। मातृ-भूमि के नाम पर उन का खड्ग पर हाथ जाता था और फिर विचार में निमग्न हो कर वे अश्रुपात करने लगते थे।

इस भाव का मूल क्या था? इस का मूल वही धार्म्मिक शिक्षा थी जो शिवाजी के समस्त जीवन का उद्देश्य था। धर्म्म का प्रभाव उन पर इतना पड़ा था कि शिवाजी ने तीन वार असार संसार को छोड़ कर सन्यास लेने का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था पर गुरुजनों के समझाने से उन्होंने अपने विचार पलट

दिये *। और संसार में पुनः प्रवेश किया। धर्म के ऊपर शिवाजी का बाल्यकाल ही से इतना दृढ़ विश्वास था चाहे जैसा कठिन समय उपस्थित हो जाय वे धार्मिक व्यवस्था को कदापि नहीं त्यागते थे। भवानी के उत्कट उपासक शिवाजी जब किसी काम को आरम्भ करते तो अपनी अधिष्ठात्री देवी के कल्याणकर वचन सुनने को मन्दिर में अवश्य पधारते। जो कुछ उन्हें मन्दिर में भासित होता था उस को वे लिख कर रख लेते थे और उसी के अनुसार काम करते थे। उसी दृढ़ विश्वास के कारण शिवाजी औरङ्गजेब की कुटिल नीति को जानते हुए भी दिल्ली गये थे। और अफ़ज़लख़ां से सांघातिक समय पर एकाकी मिलने को प्रस्तुत हो गये थे। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' यह महावाक्य शिवाजी के जीवन में सत्यतः चरितार्थ होता था।

युद्ध तथा धर्म की शिक्षा प्राप्त करा दादाजी ने शिवाजी को जागीर के कामों की ओर लगाया। जब वीर बालक शिवाजी को अन्य कामों से फ़ुरसत मिलती

---

* इतिहास में प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिन वीरों ने एक बार संसार त्यागने का संकल्प किया परन्तु फिर उन को उसी क्षेत्र में आना पड़ा तो उन्हों ने संसार में गुरुतम कार्य किये।

तो दादाजी इन को अपने साथ ले उन की जागीर में घुमाते थे। इस घुमाने में एक बड़ी भारी शिक्षा छिपी हुई थी। देशभक्ति तथा स्वजातिभक्ति उत्पन्न कराने का यह बड़ा अच्छा तरीक़ा था। प्रजा की अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए शिवाजी को दादाजी यह दिखलाते थे कि देखो महाराष्ट्रीय प्रजा की क्या दुरवस्था है। मुसलमानों के पैशाचिक अत्याचार के कारण प्रजा की क्या हालत है। मुसलमानी धर्म्म को स्वीकृत किये हुए हिन्दुओं को दिखला कर दादाजी यह बतलाते थे कि पैतृक धर्म्म विसर्जन कर म्लेच्छों का भोजन, आचार, व्यवहार आदि का अवलम्बन कर ये कलंकित हिन्दू, हिन्दू नाम पर कालिमा पोत रहे हैं। कहीं भग्न मन्दिरों को दिखलाते हुए दादाजी समझाते थे कि अमानुषिक प्रचण्डता को प्रदर्शित कर विधर्म्मियों ने इन मन्दिरों तथा मूर्त्तियों को तोड़ कर मसजिदें तैयार करवाई हैं। ऐसी ही बातों को दिखला कर दादाजी शिवाजी के विद्वेषाग्नि में फूंक मार रहे थे। इस के साथ ही साथ प्रजा की अवस्था दिखला कर उस में प्रेम उत्पन्न करवा रहे थे। प्रजा भी इन को देख कर परम प्रसन्न होती थी। शिवाजी के समवयस्क मित्र जब शिवाजी के साथ में रहते थे तो शिवाजी उन पर अपने

आन्तरिक भाव प्रकट कर उन को अपनासा बनाने का प्रयत्न करते थे। बुद्धिमान-ब्राह्मण ने भारत के कण्टक रूपी यवनों को निकाल भगाने के लिये इस सच्ची वीर्य्यमयी प्रतिमा की स्थापना की। ऐसे गुरु शिष्य के उपस्थित होने पर संसार में महान् परिवर्त्तन कर देना कुछ भी असम्भव नहीं है।

जीजीबाई तथा दादा की शिक्षा में ही शिवाजी की बाल्यावस्था व्यतीत हुई। मुसलमानों से आन्तरिक द्वेष रखते हुए शिवाजी युवावस्था की ओर बढ़े।
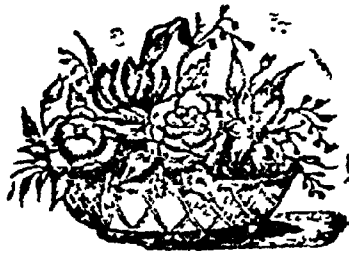
षष्ठ परिच्छेद।

कार्य्य क्षेत्र में अवतरण।

शिवा जी ने युवावस्था काण्ड के प्रथमाध्याय में पैर रक्खा। इस समय की धीर, वीर, गम्भीर, स्फूर्त्ति-मान्, बलिष्ट मूर्त्ति को जो देखता था वही मुग्ध होजाता था। प्रियदर्शन शिवाजी जिधर निकल जाते थे उधर ही लोग टकटकी बांध कर उन को देखने लगते थे। अपनी सहनशीलता के कारण शिवाजी अपनी प्रजा के परम प्रेमास्पद हो रहे थे, सहिष्णुता के कारण शिवाजी का आसपास के मरहठों से प्रेमाधिक्य होगया। मर-हटों में मावली जाति से उन का महान् प्रेम था। शिवाजी के अभिमानशून्य बर्त्ताव से मावली जाति भी उन पर मोहित होगई।

मावली जाति प्रायः उस समय असभ्य और अशि-क्षित गिनी जाती थी। ये लोग अपना समय किसानी में बिताते थे पर जब किसी विदेशी शत्रु का आक्रमण होता था तो ये सब एकत्रित हो एक भाव से मातृभूमि की रक्षा के लिये परिकर बांध कर तैयार हो जाते थे देश में जब शान्ति रहती थी तो इन का युद्धकला से कुछ सम्बन्ध नहीं रहता था। इस मावली जाति में

ऐक्यसूत्र की आवश्यकता थी कारण यह कि इस जाति के कितने ही मुखिया थे और मुखियाओं के विरोध के कारण मावली जाति में भिन्नता थी पर उस में स्वदेश-प्रेम का आधिक्य था। इन में सब से बड़ा गुण यह था कि धोखा देना इस जाति ने सीखा ही न था। जिस के ये मित्र होजाते थे उस का साथ आजन्म देते थे। इस मावली जाति के कुछ मनुष्य दादाजी के यहां काम करते थे अतएव शिवाजी का सम्पर्क इन लोगों से बाल्य-काल ही से होगया था। शिवाजी इनके गुणों से मोहित होकर इन पर सर्वदा दया, नम्रता तथा करुणाभाव प्रद-र्शित कर इन को सर्वदा प्रसन्न रखते थे अतएव ये भी शिवा जी के पूर्ण सहचर होगये थे। जब शिवाजी कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए तो उन्होंने इस जाति को अपना साधक बनाया। थोड़े ही दिनों में मावली सर्दारों को अपना प्रेमी बना कर घर के सर्वनाशी झगड़ों को दूर कर जातीयता की वृद्धि की। मातृभूमि-रक्षा का मन्त्र लेकर वे कार्य्यक्षेत्र में उतरे थे अतएव प्रथम उन्होंने मावली जाति को इस मन्त्र से दीक्षित किया। ये भी इस मन्त्र से अभिमन्त्रित होकर शिवाजी के कार्य्य-साधन-निमित्त प्राणपण से उद्यत होगये। मावली-अधि-पतियों के साथ में शिवाजी ने प्रत्येक घाट, घाटी, तथा

पहाड़ी-पथ देख भाल लिये थे। दक्षिण की अब कोई ऐसी जगह न बची थी जहां शिवाजी न पहुंच गये हों।

जिस समय शिवाजी अपनी उन्नति के लिये सचेष्ट हुए तो दक्षिण के राज्य विपद्ग्रस्त थे। उस समय औरंगजेब का राज्य-काल था। तीनसौ वर्ष पूर्व की घटनाएँ पुनः घटित होने लगीं। दिल्ली से निरन्तर आक्रमण होने के कारण दक्षिणीय राज्यों की शक्ति प्रतिदिन हीन होती चली जाती थी। बीजापुर इत्यादिक को स्वस्थ होने का अवकाश प्राप्त नहीं होता था। १० मई सन् १६३६ को सम्राट् शाहजहां ने अपने तृतीय पुत्र औरङ्ग़ज़ेब को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर भेजा। उसने आते ही आते निज़ामशाही का मूलोच्छेदन कर दिया। अन्तिम शाह को बन्दी कर औरङ्गजेब ने ग्वालियर भेज दिया। इस समय खान्देश, अहमदनगर, तिलंगाना और बरार मुगलों के आधीन होगये थे। सन्१६४३ई० में जब औरङ्गजेबने फ़क़ीरी ली तो उसने बागलान* प्रदेश मुग़ल-राज्य में और जोड़ दिया था। बीजापुर आदि की परि-स्थिति ठीक नहीं थी। वहाँ एक प्रकार की अराजकता फली हुई थी। देश के प्रबन्ध में बड़ा ही गड़बड़ था। देश की कुञ्जी अर्थात् दुर्गों की परम दुर्दशा थी। दुर्गा-

* यह प्रदेश खान्देश और पश्चिमीय घाट के बीच में था।

धिपति प्रायः स्वतन्त्र थे। युद्धकाल को छोड़ इन क़िलों की हालत बहुत ख़राब रहती थी। इनमें कुछ सटर पटर सेना को छोड़ और कुछ भी नहीं था। मालूम होता है कि मुसलमान-राज्याधीश इन के वास्तविक लाभ से अनभिज्ञ थे अतएव उन की यह दशा रहती थी। जो कुछ भी हो इन की दशा अतीव शोचनीय थी।

ऐसे ही समय में शिवाजी ने राष्ट्र-स्थापन का कार्य्य हाथ में लिया था। इस समय शिवाजी के मन के तीन आदमी थे। प्रथम देशमुख बाजीफसलकर और दूसरे दो ज़िमीन्दार यसजी कङ्क और ताना जी मूलसरे थे। यों तो शिवाजी अपने अधीनस्थ समस्त मुखियाओं का आदर सत्कार करते थे परन्तु हार्दिक प्रेम तथा विश्वास इन्हीं तीन जनों पर था। इन तीनों की ही सलाह से महाकार्य्य-सम्पादन में शिवाजी प्रवृत्त हुए। सब से प्रथम यह बात सोची गई कि जब तक कोई दुर्ग अपने अधीन न हो तब तक आगे कार्य्य का बढ़ना सम्भव नहीं। दुर्ग बिना हम लोग एक प्रकार से अरक्षित हैं। यही विचार कर शिवाजी ने दुर्ग लेना स्थिर किया। पूना की जागीर में कोई दुर्ग न था अतएव उनकी दृष्टि तोरण की ओर गई। अड़ोस पड़ोस के क़िलों में 'तोरण' बड़ा मज़बूत समझा जाता था अतएव पहिले उसी को अधि-

कृत करना विचारा गया। शिवा जी ने तोरण के गढ़-पति से गुप्त सन्धि कर उस को अपने अधिकार में ले लिया। यह घटना १६४६ ई० की है। इतिहास में यह घटना चिरस्मरणीय रहेगी। इस दुर्ग के अधिकरण के साथ ही शिवाजी के राज्यस्थापन का श्रीगणेश हुआ।

दुर्ग तो ले लिया गया पर यह दुर्ग बीजापुर का था। यदि बीजापुर के सुलतान बिगड़ उठते तो शिवाजी की क्या शक्ति थी कि उन्हें रोक सकते अतएव उन्होंने सुलतान के प्रसन्न करने के लिये एक चाल चली। यह समझ कर कि सुलतान को चिढ़ाना कुछ सुबुद्धि का काम नहीं है शिवाजी ने अपने वकील बीजापुर-दरबार में भेजे। उन्होंने इस बात को दिखलाया कि 'तोरण' को मेरे अधिकार में रखने से सुलतान का बड़ा लाभ है। पूर्व क़िलेदार ने कई वर्षों का कर भी नहीं दिया है। मैं वह सब देने को राज़ी हूं और यदि सुलतान चाहें तो मैं आप की सहायता भी दत्तचित्त हो कर करूं। बीजापुर से उत्तर आने में कुछ देरी हुई, उस का कारण यह था कि सुलतान का चित्त उस समय कर्नाटक में लगा हुआ था। यह विलम्ब शिवाजी को अत्यन्त लाभकारी हुआ। उन को तोरण के दृढ़ करने का अवकाश मिल गया। ईश्वर की कृपा से पूर्व सञ्चित धन भी इस क़िले में प्राप्त हुआ। थोड़े दिनों के

बाद उत्तर ले कर वकील लौट आये और सब हाल शिवाजी से कह सुनाया।

दुर्ग को अभेद्य कर शिवाजी ने उस का नाम 'तोरण' के स्थान पर "पूर्णचन्द्रगढ़" रक्खा।

सप्तम परिच्छेद ।

शिवाजी के आरम्भिक कार्य्य ।

हम गत परिच्छेद में लिख आये हैं कि तोरणा दुर्ग में शिवाजी को बहुत सा धन प्राप्त हुआ था । उन्होंने उस धन से अस्त्र, शस्त्र तथा गोला बारूद ख़रीद डाला। अपनी छोटी सी सेना में अधिक वीरों को भर्ती करने लगे । शिवाजी ने यहीं तक न किया किन्तु उन्होंने एक दूसरे दुर्ग बनाने का निश्चय किया । तोरणा से तीन कोस की दूरी पर महोरबद्ध नामक एक पहाड़ है । इसी पहाड़ पर शिवाजी ने एक साल से कम समय में एक दुर्ग तैयार करवा लिया । सन् १६४७ में यह दुर्ग तैयार हो गया और उस का नाम 'रायगढ़' रक्खा गया । जिस समय रायगढ़ बन ही रहा था शिवाजी ने अपने वकील बीजापुर-दरबार में भेज दिये थे पर बीजापुर-सुल्तान प्रसन्न न हुए । उन के दरबार में बड़ी ही हलचल मची । सुल्तान ने शाहजी से शिवाजी के इस कार्य्य की कैफ़ियत मांगी । प्रत्युत्तर में शाहजी ने लिखा कि मेरा वंश राजभक्त है अतएव शिवाजी ने जो काम मुझ से बिना आज्ञा लिये हुए भी किया है अवश्यमेव वह जागीर तथा दरबार की भलाई के लिये किया होगा ।

शाह को यों पत्र लिख कर शाहजी ने दादाजी को पत्र लिखा कि शिवाजी भविष्यत् में ऐसा कार्य्य न करे ।

शाहजी की आज्ञानुसार दादाजी ने शिवाजी से कहा—"देख शिवा ! तू अपने पिता की आज्ञा मान कर इस काम से हाथ खींच ले । ऐसे कामों में बड़ी २ कठिनाइयां होती हैं । पग पग पर मृत्यु का सामना करना पड़ता है । इस कार्य्य में पड़ने से केवल तुम्हारे ही प्राण सङ्कट में नहीं हैं किन्तु सुल्तान की क्रोधानल की तुम्हारा समस्त वंश आहुति हो जायगा अतएव मुसलमान-दरबार की अधीनता स्वीकार करते हुए राज-भक्ति का पूर्ण परिचय दे ।" अब यहां पर एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि दादाजी जिन्हों ने पूर्व में शिवाजी को जो शिक्षा दी थी उस के विपरीत यह शिक्षा कैसे देने लगे ? इस का उत्तर तो यह है कि दादाजी शिवाजी की प्रकृति से भले प्रकार से परिचित थे । उन को ज्ञात था कि जो बीज शिवाजी में बो दिया गया है उसका नाश होना सम्भव नहीं है, दूसरे इस प्रश्न का उत्तर उस समय मिल जाता है जिस समय दादा ने मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए शिवाजी को उपदेश दिया था ।

दादाजी ने इस समय शिवाजी को खूब समझाया पर शिवाजी ने " जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरी-

यसी" को अच्छी तरह समझ लिया था। वे जन्म-भूमि की रक्षा के लिये आत्मसमर्पण कर चुके थे। "कार्य्यं साधयेत् वा शरीरं पातयेत् वा" इस कठिन मन्त्र को हृदयाङ्कित कर लिया था। संसार में कौन था जो उन को इस प्रतिज्ञा से विचलित करा सकता। उन्हों ने इस समय दादाजी का मन भर दिया था और अपने कार्य्य-साधन में प्रवृत्त हुए परन्तु हा दैव! वृद्ध दादाजी को मातृभूमि का उद्धरण अपने चक्षुओं से देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए दादाजी ने शिवाजी को बुला कर कहा—'पुत्र शिवाजी! मेरी अन्तिम तथा हार्दिक इच्छा को सुनो। मैं अब मरणासन्न हूं। क्या करूं मैं अपनी आंखों से तुम्हारे भविष्य के अद्भुत कर्म देख सुन न सकूंगा। 'ईश्वरेच्छा-बलीयसी'। इस बात का सर्वदा ध्यान रखना कि अपने जीवन को मातृभूमि के उद्धार में सोत्साह व्यतीत करना। गो-ब्राह्मण की रक्षा से भूल कर भी मुख न मोड़ना। हिन्दू जाति तथा देवालयों की रक्षा में कभी त्रुटि न करना। कर्त्तव्य-पालन में प्राण जांय या रहें इस मूलमन्त्र को कभी विस्मृत न करना।" ऐसा सदुपदेश दे कर दादाजी इस नश्वरदेह को त्याग कर परमधाम सिधारे।

शिवा जी को इन की मृत्यु से परम शोक हुआ पर उस शोक को दबा कर यथा विधि उन का प्रेत कर्म्म करवा कर अपने कार्य्य में संलग्न हुए। बाल्यकाल से ही जो उपदेश शिवा जी के हृदय पर अङ्कित किये गये थे मरणासन्न दादा जी की गम्भीर वाणी ने उन में विद्युच्छक्ति का काम किया। दादा जी के प्रत्येक शब्द उन को आकाश वाणी की तरह प्रतीत होने लगे। अब विशेष उत्साहित हो कर शिवा जी ने अपना कार्य्यारम्भ किया। दादा जी की मृत्यु के पश्चात् जागीर का समस्त भार शिवा जी पर पड़ा। उन की जागीर उन्नतावस्था में थी। अपने सम्पूर्ण कार्य्य-कर्त्ताओं को बुला कर यथेष्ट उद्देश्य-साधन का उपदेश करना आरम्भ किया। उन्हों न भी तन मन से अपने प्रभु की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। शाहजी इस समय कर्नाटक में थे। उन्हों ने दादा जी की मृत्यु का हाल नहीं सुना था। कुछ धन की मांग के लिये शाहजी ने अपना दूत दादा जी के पास भेजा पर उस समय शिवा जी सञ्चित धन सेनादि की वृद्धि में व्यय कर रहे थे अतः पहिले तो उस को टालते रहे पर अन्त में लिख भेजा कि यहां का व्यय बहुत बढ़ गया है अतएव धन का भेजना एक प्रकार से असम्भव है। यहां के व्यय के लिये यदि आप कुछ कर्नाटक से भेज दें तो इस समय बड़ा काम निकल

जाय। यह उत्तर पा कर शाह जी चुप्पी साध गये।

शाह जी के दूत से छुट्टी पा कर शिवा जी को यह चिन्ता हुई कि चाकनकोट के क़िलेदार फिरङ्गजी और सोपा परगने का शासन-कर्त्ता बाजी मोहिते मेरे वश में आ जावें। फिरङ्ग जी तो शिवा जी के कहने सुनने में आ गये और अपने दुर्ग को शिवा जी को अर्पित कर दिया। इतना ही नहीं किन्तु भविष्य में शिवा जी के कार्य्य-सम्पादन में पूर्ण सहायता करने की प्रतिज्ञा की जिस को उन्होंने यथाशक्ति निबाहा। बाजी मोहिते ने शिवा जी का कथन किसी प्रकार से भी स्वीकार न किया। यद्यपि शिवा जी को उस से बहुत आशा थी क्योंकि वह शिवा जी की सौतेली मा तुकोबाई का भाई था पर दुष्टप्रकृति होने के कारण सहायता देने के बदले बिगड़ उठा। अन्त में अन्य कोई उपाय न देख कर शिवा जीने एक अंधकारमयी रात्रि में कुछ मावलियों को ले कर बाजी पर आक्रमण कर विजय पाई। शिवा जी ने विजय प्राप्त होने पर वीरोचित उदारता दिखलाते हुए उस को बन्दी न किया किन्तु सम्मान सूचक शब्द कह कर उस की इच्छानुसार तुकोबाई के पास भेज दिया *। इन दो कामों के करने के उपरान्त शिवाजी

* कहते हैं कि इस विजय में शिवाजी को तीनसौ अश्वारोही तथा अनेक वीर सैनिक प्राप्त हुए थे।

वा जी ने कुण्डाने * के यवन क़िलेदार को कुछ धन दे कर उस दुर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया। यह दुर्ग समुद्रतट से लगभग ४३०० फुट और पूना के धरातल से प्रायः २३०० फुट ऊंचाई पर स्थित है। इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिये कोई भी सीधा मार्ग नहीं है।

पूना से प्रायः चौदह मील पर नैऋत्य कोण में यह दुर्ग स्थित है। सिंहगढ़ और भूलेश्वर पहाड़ों के उच्चतम शिखर पर यह दुर्ग निर्मित किया गया था। कब और किसने इस को बनवाया इस बात का पता कुछ भी नहीं चलता है। परन्तु इतना अवश्यमेव कहा जा सकता है कि इस देश में मुसलमानों के आगमन के पूर्व भी यह दुर्ग स्थित था। जनोक्ति है कि यहां पर कौण्डिन्य ऋषि का आश्रम था अतएव उस स्थान का नाम कौण्डिन्यपुर पड़ा हो जिससे कुण्डाना (कोंडाणा) बन गया हो। इस में तो कुछ भी सन्देह नहीं कि यह यवनों का बनवाया न हो कर किसी हिन्दू राजा का बनवाया हुआ था। जो कुछ भी हो यह दुर्ग अति प्राचीन और सुदृढ़ है। शिवाजी ने इस दुर्ग का नाम 'सिंहगढ़' रक्खा। इस दुर्ग की प्राप्ति से शिवाजी को अतीव लाभ

---

* सिंहगढ़ विजय में इस का नाम कोंडाणा लिखा है। यह प्रदेश खान्देश और पश्चिमीय घाट के बीच में था।

हुआ। इस दुर्ग के आस पास मावली जाति की अधिकतर थी अतएव जब यह दुर्ग शिवाजी के पास आगया तो समस्त मावली भी उन के प्रभुत्व में आ गये इस से उनकी सेना की वृद्धि बहुत हो गई। इस समय शिवाजी की जागीर में पूना और सूपा के सिवाय वारामती तथा इन्द्रपुर भी सम्मिलित हो गये। इन सब कामों के उपरान्त शिवाजी की दृष्टि पुरन्धर पर जा पड़ी। इस दुर्ग के हस्तगत करने की उन को परमावश्यकता थी क्योंकि यह दुर्ग पूना और वारामती के रास्ते में पड़ता था। विना उस के हस्तगत किये हुए उन का रास्ता सुगम नहीं होता था।

इस दुर्ग का अध्यक्ष एक ब्राह्मण था। पूर्व ही से उस की दादा जी से हार्दिक सहानुभूति थी पर अपनी सरकार पर उस की श्रद्धा न थी इसी कारण वह कभी कभी उत्पात कर बैठता था। उस की स्त्री ने उस को कई वार समझाया पर उस ने उस ओर कुछ भी ध्यान न दिया। जिस का फल यह निकला कि वीजापुर के सुल्तान ने क्रोधित हो कर उस को तोप के मुंह पर बांध कर उड़वा दिया। यह घटना १६४८ ईसवी में हुई थी। दुर्गाध्यक्ष की मृत्यु के पश्चात् उस की अध्यक्षता के निमित्त उस के तीन पुत्रों में वैमनस्य हो गया

जो यहां तक बढ़ा कि उन तीनों में युद्ध उपस्थित हुआ पर भाग्यवश युद्ध छिड़ने के पूर्व उन्हों ने यह सलाह की कि शिवाजी जो फैसला करें वह हम तीनों को माननीय होगा। उन्हों ने शिवाजी से अपनी इच्छा प्रकट की। उन्हों ने जिस समय अपनी इच्छा प्रकट की थी शिवाजी उस समय पुरन्धर छो कर सूपा को जा रहे थे, रास्ते में उन लड़कों के कहने से रुक गये। क़िले में जा कर उन्हों ने सुना कि वहां के मनुष्यों की यह इच्छा है कि स्वयं शिवाजी इस दुर्ग को अपने अधिकार में ले लें। उन लोगों की यह इच्छा नहीं थी कि इन अयोग्य लड़कों में युद्ध हो जाय जिससे निरर्थक जीवहानि हो। उन की इच्छा जान कर शिवाजी ने दुर्ग पर अधिकार करने का उपयुक्त समय समझा। जिस समय शिवाजी और उन तीनों भाइयों का वार्तालाप हो रहा था तो बड़ा भाई शयन के लिये चल दिया। शिवाजी ने उपस्थित दोनों भाइयों को अपने अधिकार में कर तीसरे को बन्दी कर लिया और तत्पश्चात् दुर्ग को अधिकृत कर लिया। मि० डफ़ ने शिवाजी के इस कर्म की निन्दा की है परन्तु उन्हों ने स्वयं माना है कि दुर्ग को हस्तगत करने के अनन्तर शिवाजी ने उन को जागीर प्रदान कर अपनी सेना में भर्ती कर लिया था जिस में रह कर

उन्हों ने सुख्याति प्राप्त की। उपर्युक्त घटना पर वि-चारपूर्वक ध्यान देने से डफ् साहब का मत खंडित हो जाता है। व्यक्ति विशेष पर ध्यान न देकर शिवाजी ने सर्वसाधारण की इच्छा की ओर ध्यान दिया था अतएव उन का यह कार्य्य कदापि निन्दनीय नहीं कहा जा सकता है।

इस के उपरान्त शिवा जी ने अल्पकाल में रोहिड़ तथा कल्याण तक सह्याद्रिस्थ दुर्गों को हस्तगत कर लिया। उन की शक्ति इस समय प्रतापगढ़ तक पहुंच गई थी। लोहगढ़ तथा रायरी दुर्गों के विजय के पश्चात् उन के प्रारम्भिक कार्यों का अन्त होगया। इस समय प्रायः चाकन से नोरा तक की भूमि उनके अधिकार में आगई थी। अब यहां एक यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शिवाजी ने इतने दुर्गों को अपने अधिकार में कर लिया और बीजापुर के सुल्तान कानों में क्यों तेल डाले पड़े रहे? इस प्रश्न के उत्तर का कुछ भाग हम ऊपर लिख आये हैं पर यहां पर पुनः यह कहना आवश्यक है—जिस समय उन्हों ने 'रायगढ़' तथा 'तोरण' के दुर्गों पर अपनी पताका फहराई थी उस समय उन्होंने सुलतान को लिख भेजा था कि यह मेरा कार्य्य सरकार की वृद्धि के लिये है जिस से सुलतान भी सन्तुष्ट होगये थे। बाजी

मोहिती का निकाल देना शिवा जी का आधिपत्य-कर्म था। बाजी उन्हीं की जागीर में रह कर उन से विरोधाचरण करता था अतएव उस में सुलतान के हस्ताक्षेप करने की कुछ आवश्यकता नहीं थी। शिवाजी के अन्तिम कर्मों से बीजापुर के सुलतान के कान खड़े होगये थे। जिस समय शिवाजी ने कल्याण पर अधिकार जमाया बीजापुर से उनकी अनबन प्रारम्भ होगई और यहीं से शिवाजी के जीवन-नाटक का प्रथम पट उठता है और द्वितीय पट गिरता है।
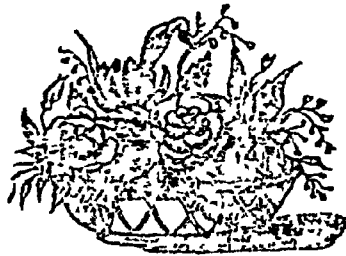
अष्टम परिच्छेद ।

बीजापुर से अनबन ।

अब तक शिवाजी ने जो कुछ दुर्ग या भूमि पाई थी उस में उन्हें नर-रक्त के बहाने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी और न अभी तक उन्हों ने कुछ राज्य-विभाग में गड़बड़ी की थी परन्तु अब प्रतिदिन की विजय कब तक छिप सकती थी। धीरे २ सब खबरें सुल्तान के कानों तक पहुंचने लगीं पर शिवाजी ने इस बात की कुछ भी शङ्का न की। मत्तमृगेन्द्रवत् शिवाजी मृगवत् यवन-दुर्गाध्यक्षों को हड़पते चले जाते थे। निरुद्यम बैठना तो उन्हों ने सीखा ही न था। वे सर्वदा कुछ न कुछ यत्न सोचा ही करते थे। अब उन्हों ने यह विचारा कि हमारे लिये यह अत्यावश्यक है कि हम सर्वदा देशदशा से परिचित रहें। अतः उन्हों ने इतस्ततः गुप्तचरों को कच्चा हाल जानने के लिये नियुक्त कर दिया। स्वामिभक्त गुप्तचर भी अपने कार्य्य-सम्पादन में निरुत्सुकता न दिखलाते थे। एक दिन एक गुप्तचर ने आ कर कहा कि कल्याण के सूबेदार मौलाना अहमद के पास को कुछ कोष जा रहा है। विधर्मियों के धन लूटने में कुछ पाप न समझ कर शिवाजी ने उस को छीन लेने का विचार किया। सूपा से तीन सौ अश्वारोही तथा थोड़े से मावली वीरों को

ले कर शिवाजी ने जाते हुए कोष पर आक्रमण कर छीन लिया और उसे ले कर वे रायगढ़ चले आये। सुल्तान तक यह ख़बर भी न पहुंची होगी कि शिवाजी ने काङ्गोड़ी, टोंग, टिकोना, भूरूप, कारी इत्यादि दुर्ग हस्तगत कर लिये। दुर्गहीन होने के कारण शिवाजी को इन के लेने में कुछ कठिनता नहीं हुई। इस के पश्चात् उन्हों ने कङ्कण * के कई एक नगर लूट लिये जिस में उन्हें बहुत सा धन मिला। प्राप्त धन से उन्हों ने अपनी सैन्यशक्ति में बहुत उन्नति की।

आबाजी सोनदेव जिन्हों ने दादाजी से शिक्षा-ग्रहण की थी कल्याण के सूबेदार से भिड़ पड़े जिस का फल यह हुआ कि सोनदेव ने मौलाना अहमद को बन्दी कर लिया और उस प्रान्त के समस्त गढ़ों पर अपना अधिकार कर लिया। मौलाना को बन्दी कर आबा जी ने उन को शिवा जी के सुपुर्द कर दिया। आबा जी के इस कर्म से प्रसन्न हो कर शिवाजी ने उन को वहां का सूबेदार नियुक्त कर दिया। आबा जी ने वहां पहुंच कर प्राचीन राज्य सञ्चालन रीत्यनुसार कार्य्यारम्भ किया। कल्याण के सूबे के पास यवन सूबेदार सीदी का सूबा था अतएव शिवा जी को उस से सर्वदा खटका

* इस देश का अपभ्रंश व प्रचरित नाम कोंकन है।

रहता था। इस भय को दूर करने के लिये उन्हों ने उस के निकट ही दुर्ग बनवा दिये।

इधर बन्दी मौलाना साहब का उचित सत्कार कर शिवाजी ने उन को बीजापुर भेज दिया। सुल्तान ने जिस समय यह समस्त वृत्तान्त सुना उन का क्रोधानल भभक उठा। प्रथम तो उन्हों ने अहमद को तिरस्कृत कर राजधानी से निकाल दिया और पश्चात् शिवाजी के दमन करने का प्रयत्न करने लगे। इस समय उन को इस बात का ध्यान आया कि इस सब उत्पात के मूल कारण शाह जी ही हैं। यदि उन्हों ने पहिले से ही शिवाजी को रोका होता तो कदापि ये समस्त बातें सन्मुख न आतीं। शिवा जी को रोकने के बजाय वे उन को उभाड़ते हुए से ज्ञात होते हैं। ऐसी अवस्था में कर्नाटक की जागीर से शाह जी द्वारा शिवा जी को सहायता पहुंच सकती है। ऐसा विचार कर सुल्तानने प्रथम शाह जी का ही दमन करना विचारा। उन का यह ख्याल था कि यदि शाह जी बन्दी कर लिये जायँगे तो शिवा जी भग्नोत्साह हो कर अवनत हो जायँगे। सुल्तानने इस काम के लिये मुहदल के नायक बाजी घोरपड़े को उपयुक्त समझा। एक गुप्त पत्र लिख कर बाजी से उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। पत्र के अन्त में यह लिख दिया था

कि शाह जी को बन्दी करते समय वह इस बात को अपने ध्यान में रक्खे कि उन के हृदय में सन्देह उत्पन्न न होने पावे क्योंकि यदि उन को सन्देह हो जायगा तो उन का हाथ आना कुछ हंसी खेल नहीं। उन का हाथ से निकल जाना बीजापुर राज्य के लिये विष-कण्टक हो जायगा अतः इस कार्य-सम्पादन में तुम अति सावधानता और शीघ्रता करना।

पत्र को पा कर बाजी फूल कर कुप्पा हो गये। उन्हों ने विचारा कि अब ईश्वर दाहिने आ गया है। मैं यदि अपने कार्य्य में सफलीभूत हुआ तो दरबार में अवश्य मेरी प्रतिष्ठा बढ़ जायगी और लाभ भी अधिक होगा। आज कल ईश्वर मेरे ऊपर अनुकूल ज्ञात होते हैं। इसी प्रकार मन ही मन सोचता और प्रसन्न होता हुआ शाह जी को बन्दी करने को उद्यत हुआ। उस हिन्दू-कुल-कलङ्क ने अपने यहां एक उत्सव किया और उस में उस ने शाह जी को भी निमंत्रण दिया। शाहजी को इस विश्वासघातकता का ज्ञान न था। किसी प्रकार की शङ्का न कर सामान्य भाव से शाह जी बाजी के गृह पर चले गये। भोजन करते समय बाजी ने गृहस्थित गुप्तचरों द्वारा शाह जी को बन्दी कर लिया। शाह जी के पास उस समय कोई अस्त्र भी न था जिस से वे

अपनी रक्षा करने में समर्थ होते। परवश हो कर शाहजी बन्दी हुए। दुष्ट ने दुष्टता का यहीं पर अन्त न किया उस ने तत्क्षण उन को सुल्तान के पास बीजापुर भेज दिया। अपनी धूर्त्तता में पूर्ण सफलता देख सुल्तान का हृदय गद्गद् हो गया। उन्हों ने जान लिया कि अब शिवा जी की कुञ्जी मेरे हाथ में आ गई। अब उन के पतन में कुछ भी विलम्ब नहीं है।

सुल्तान ने दरबार में शाहजी को बुला कर कहा—"शाहजी! तुम अच्छी तरह से जानते हो कि तुमने हमारा निमक खा कर ऐसा पुत्र उत्पन्न किया है जो अन्नदाता ही के ऊपर हाथ साफ़ करना चाहता है। इस समय तुम्हारी इसी में भलाई है कि तुम शिवाजी को रोक दो और अधिकृत की हुई भूमि एवं दुर्गों को मेरे समर्पण करादो। नहीं तो तुम हमको जानते ही हो। देखो शाह जी हमको मालूम हो गया है कि ये सब बीज तुम्हारे ही बोये हुए हैं। जानलो कि यदि तुम शिवाजी के रोकने का यत्न न करोगे तो तुम्हें जीवित ही पृथ्वी में गड़वा दूंगा। सुल्तान की धमकी सुनकर शाहजी अपनी निर्दोषिता दिखलाते हुए कहने लगे कि शिवाजी के इन कामों से मेरा तनिक भी सम्बन्ध नहीं है। आप उसके पतन के निमित्त जो उचित यत्न समझें सो करें उसमें

मुझे उज्र न होगा। शाहजी की इस बात से सुल्तान को सन्तोष न हुआ। उन्होंने शाहजी को एक काल-कोठरी में बन्द करवा दिया। जिस कोठरी में शाहजी बन्द किये गये थे वह अति ही छोटी थी। हवा आने जाने के निमित्त उस में केवल एक छोटा सा झरोखा था। बन्द करते समय सुल्तान ने शाहजी से कह दिया था कि यदि नियत समय तक शिवाजी आत्म-समर्पण न कर देंगे तो यह छिद्र भी बन्द करवा दिया जायगा और यही कोठरी तुम्हारी क़ब्र हो जायगी।

जिस समय शिवाजी ने सुना कि सुल्तान ने उन के पिता को क़ैद कर उन के प्राणों के लेने का संकल्प किया है और उस सङ्कल्प का कारण मैं ही हूं तो उन्हों ने आत्मसमर्पण करने का विचार किया। शिवाजी पूर्ण मातृपितृभक्त थे। 'पिता धर्म्मः पिता स्वर्गः' इस वाक्य को वे अच्छी तरह मनन करते थे। शिवाजी ने सब विजय-लालसा को तिलाञ्जलि दे कर सुलतान के यहां आत्मसमर्पण कर के पिता का उद्धार करना विचारा। जिस समय शिवाजी शाहजी के मुक्त कराने का प्रयत्न सोच रहे थे तो उन की प्राणेश्वरी सुईबाई ने आकर तीव्र स्त्री-बुद्धि का परिचय दिया। उस ने सुना कि शिवा-जी पिता के अर्थ आत्मसमर्पण करेंगे तो उन को इस प्रकार

से समझाना प्रारम्भ किया—"क्या आप सुलतान को आत्मसमर्पण कर अपने पिता अर्थात् मेरे पूजनीय स-सुर की रक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे? कदापि नहीं। वह आप को भी हाथों में कर दोनों ही का सर्वनाश करेगा। यह मुसलमानी चाल आज नई नहीं है। आप इन के कपट-जाल को जानते हुए भी उन पर विश्वास करने को उद्यत हैं। मैं स्त्री हो कर आप को उपदेश करने में समर्थ नहीं हूं किन्तु समय के परिवर्तनों को देख कर आप से प्रार्थना करती हूं कि इन अविश्वासी यवनों का भूल कर भी विश्वास न कीजिये। अब इस समय ऐसा यत्न सोचिये कि सांप मरे न लाठी टूटे। आप स्वतन्त्र भी रहें और आप के पिताजी भी बन्धन-मुक्त हो जायँ।

पत्नी की ओजस्विनी वाक्शक्ति ने शिवाजी पर अद्भुत प्रभाव डाला। उन्होंने तत्काल आत्मसमर्पण का ध्यान त्याग दिया और अन्य उपाय से पिता की रक्षा का मनसूबा बांधा। उन का ध्यान दिल्लीश्वर की ओर गया, मन में विचारा कि बीजापुर की शाही दिल्ली से कई बार धक्का खा चुकी है। अतएव यदि सम्राट् शाहजहां से इस समय सहायता लूं तो कदाचित् पिताजी की मुक्ति हो जाय। शिवाजी को शाहजहां से

सहायता मिलने की आशा थी क्योंकि अभी तक शिवा जी ने मुग़ल-राज्य में हस्तक्षेप नहीं किया था और दूसरे शिवाजी की वंश-वीरता से सम्राट् अच्छी तरह परिचित थे। शिवाजी ने पिता के उद्धार की प्रार्थना की और उसे शाहजहां ने स्वीकृत कर लिया। इतना ही नहीं. किन्तु शाहजी की पूर्वविरोधिता को दबा कर शिवाजी को अपना अनुयायी बना कर पांच हज़ार घोड़ों का मनसबदार भी बनाना चाहा पर शिवाजी की कुण्डली में परतन्त्रता के ग्रह नहीं पड़े थे। शाहजहां को प्रार्थना-पत्र भेजने के साथ ही अन्य युक्तियों से भी पिता के छुड़ाने का यत्न करने लगे। दिल्ली से पत्रोत्तर आने के पूर्व ही शिवाजी अपने कार्य्य में सफलीभूत हो गये। आदिलशाही दरबार में उन्नतहृदय ब्राह्मण मन्त्री मुरारपन्त उपस्थित थे। मुरारपन्त शाहजी से आन्तरिक सहानुभूति रखते थे। वे शिवाजी की प्रार्थना की अपेक्षा न कर शाहजी के मुक्त कराने की चेष्टा करने लगे और अन्त में सन् १६५२ मे उन को इस असह्य कष्टदायी कारागार से मुक्त करा कर चार वर्ष के लिये राजधानी में नज़रबन्द कर रक्खा।

शिवाजी ने जब पिता के कारागारमुक्त होने का समाचार सुना तो उन्होंने दिल्लीश्वर का अनुचर होना उचित

न समझा पर हठात् प्रस्ताव का फेर लेना भी राजनीति के विरुद्ध समझ कर ढिलाई से काम लेना आरम्भ किया। थोड़े दिनों के बाद एक दूत द्वारा आगरे को लिख भेजा कि यदि सम्राट् मेरे पिता को अहमदनगर और जूनार की पूर्व देशमुखी लौटा देवें तो दिल्लीश्वर की अधीनता स्वीकार करता हूं। शाहजहां इस प्रस्ताव पर सहमत न हुए और उत्तर में लिख भेजा कि यदि शिवा जी राजधानी में उपस्थित होवें तो उन के प्रस्ताव पर ध्यान दिया जायगा। शिवा जी ने राजधानी में जाना ठीक न समझा अतः यह प्रस्ताव निर्मूल हो कर पड़ा रह गया।

उधर सुल्तान बड़ी आपत्ति में पड़े। शाह जी को नज़रबन्द कर के भी वे शिवाजी पर आक्रमण नहीं कर सके। इस का कारण केवल यही था कि सुल्तान को शिवा जी की प्रार्थनादि का हाल मिल गया था। उन्होंने विचारा यदि शिवा जी मुग़लों से मिलकर अपनी अधिकृत भूमि दिल्लीश्वर को समर्पित कर दें तो मुग़ल एक दम ही मेरे राज्य के केन्द्र में आजायंगे और तब मेरा बचाव अति कठिन हो जायगा। शिवा जी की शक्ति-वृद्धि भी उन के लिये असह्य हो रही थी अतएव उन्हों ने स्वयं युद्ध में प्रवृत्त होने से बलशाली जागीरदारों द्वारा

शिवाजी का दमन करना उचित समझा। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये सुलतान को हिन्दू जागीरदार ही प्राप्त हो गये। इन हिन्दू जागीरदारों में बाजी श्यामराजे * तथा चन्द्रराव मोरे शिवा जी के नाशहेतु अग्रगन्ता हुए। इतिहास में हिन्दुओं के लिये यह नवीन बात नहीं है जिस समय मुहम्मदगोरी ने चौहान राजा पृथ्वीराज पर आक्रमण किया था कन्नौज के राजा जयचन्द ने ही उस को सहायता दी थी जिस का फल यह हुआ कि थानेश्वर के युद्ध में हिन्दू-साम्राज्य सदैव को विलीन हो गया। ऐसी एक घटना नहीं किन्तु अनेक घटनायें इतिहास से ज्ञात होती हैं जिन से इस बात का परिचय मिलता है कि यवन-सम्राटों ने हिन्दूओं को परस्पर लड़ा कर उन का सर्वनाश किया है अतः यह उन की कुछ नई चाल नहीं थी।

शाह जी कारागार से मुक्त तो हो गये पर अभी पूर्ण स्वच्छन्द नहीं थे। अतएव शिवाजी को शाहजीकी ओर से पूर्ण भय था कि कहीं ऐसा न हो कि क्रुद्ध हो कर शाह शाहजी का शिरोच्छेदन करवा दे। शिवाजी जब इसी विचार में संलग्न थे कि कर्नाटक में अचानक घोर विद्रोह फूट गया। शाह जी के क़ैद होने के बाद वहां की दशा बहुत बिगड़ गई थी। ज़िमीन्दार और जागीर-

* कोई २ इस का नाम बाजी समरजी बतलाते हैं।

दार अपनी २ प्रधानता के निमित्त आपस में लड़भिड़ कर देश में अशान्ति फैला रहे थे। बीजापुर के दरबार ने कई एक शासक नियुक्त किये पर शान्ति स्थापन में कोई भी समर्थ न हुआ। प्रति दिन विद्रोह बढ़ता ही गया और देश की दशा बिगड़ती गई। जब शाह जी के बिना कर्नाटक में कोई भी शान्ति स्थिर न कर सका तो शाह ने पुनः उन को वहां भेजा। भेजते समय शाह ने कह दिया था कि बाजी घोरपड़े से बदला लेने का यत्न न करना। शाहजी ने कर्नाटक पहुंच कर विद्रोह शान्त किया पर अपने ज्येष्ठ पुत्र शम्भा जी को खो बैठे।

सन् १६५३ में जब शाहजी कर्नाटक पहुंचे तो उन्होंने शिवाजी को लिख भेजा कि 'शिवा! यदि तू मेरा पुत्र है तो बाजी से अवश्य बदला लेना'। शिवाजी इस पत्र को पाकर परम प्रसन्न हुए। उधर कर्नाटक में उन्होंने देखा कि 'जिस की लाठी उस की भैंस' वाली बात हो रही है तो उन्होंने उस के दमन करने का यत्न किया। शान्ति-स्थापन के लिये सेना सहित अपने पुत्र शम्भाजी को भेजा। शम्भाजी ने पहुंचते ही देखा कि अशान्ति का मूल कारण कनकगिरि का दुर्गाध्यक्ष है अतएव उन्होंने पहिले इसी का विध्वंस करना विचारा। दुर्गाध्यक्ष भी उन के विचार को जान कर संग्राम-निमित्त

आ डटा। दोनों दलों के एकत्रित होते ही तुमुल युद्ध उपस्थित हुआ। अस्त्राघातों से वीरों के शरीर छिन्न भिन्न हो कर इतस्ततः धराशायी होने लगे। स्वल्प-काल ही में सनसनाती हुई एक गोली शम्भाजी के वक्षः-स्थल को विदीर्ण करती हुई निकल गई। शम्भाजी की प्राणरहित देह भूतल पर गिर पड़ी।* सेनापति के मरते ही समस्त सेना में हलचल मच गई। सेना के पैर उखड़ गये और वह रणस्थल को छोड़ कर भाग खड़ी हुई। शाहजी ने जब अपनी पराजय का हाल सुना तो स्वयं वहां जाना विचारा। इस बार दुर्गाध्यक्ष की पराजय हुई। दुर्गाध्यक्ष को कराल काल के गाल में जाना पड़ा। वैर निर्यातन करने पर भी अपत्य-नाश ने शाहजी के हृदय में नैराश्य उत्पन्न कर दिया। राज्य सम्बन्धी कार्यों में उन की उदासीनता होने लगी अतएव देश में शान्ति के स्थान पर पुनः अशान्ति का संचार हो गया। बीजापुर की सरकार शाहजी के इस कार्य से असन्तुष्ट रही। उस को इस बात की शङ्का होने लगी कि शाहजी अपने पुत्र शिवाजी को

---

* कहते हैं कि इस युद्ध मे अफजल खां उपस्थित था। उसी की अनुमति से एक सैनिक ने ताक कर शम्भाजी पर गोली छोड़ी थी जिस से उन का प्राणान्त हुआ।

सहायता दे रहे हैं अतएव वे शिवाजी के दबाने का पूर्ण यत्न करने लगे।

शिवाजी गत तीन चार वर्षों से कोङ्कण-देशान्तर्गत महर ग्राम में निवास करते थे। यह ग्राम सुरक्षित तथा मनोहर होने के कारण शिवाजी को अत्यन्त प्रिय था। यहीं रह कर शिवाजी अपने पिता के छुड़ाने का यत्न किया करते थे। यहां पर उन्होंने अपना धन एवं बल बहुत बढ़ा लिया था। पिता के बन्धन-काल से अब तक अर्थात् १६४८ से १६५२ तक शिवाजी राज्य-वर्धन-कार्य्य में कुछ सङ्कुचित रहे। उन को बार बार यही ध्यान आता था कि यदि मैं बीजापुर-राज्य पर हाथ उठाऊंगा तो आश्चर्य नहीं कि शाह क्रुद्ध हो कर पिता का वध करवा डालें। परन्तु जब शाहजी मुक्त हो गये तो वे पुनः स्वजातीय गौरव के उत्थान का यत्न करने लगे। शाहजी को कर्नाटक भेज कर शाह ने बाजी श्यामराजे द्वारा शिवाजी का सौभाग्य-सूर्य्य ग्रसना चाहा।

बाजी श्यामराजेकी घृणित इच्छाकी पूर्त्तिमें जाबालि जागीरदार भी सम्मिलित हुआ। जाबालि जागीरदार शिवाजी की अधिकृत भूमिके निकट था। चन्द्रराव उस जागीरमें अर्ध-स्वाधीन राजा था। बाजी श्यामराजे अपने मनोरथ की

सफलता के लिये ससैन्य चन्द्रराव मोरे की जागीर में आपहुंचा। फारघाट में पहुंच कर उसने डेरे डाल दिये। यहीं चन्द्रराव से मिल कर गुप्त भाव से शिवाजी के वध करने की मन्त्रणा करने लगे और इस आशा में अपना समय व्यतीत करने लगे कि शिवाजी को एकाकी पकड़ कर और उन का सिर काट कर शाह का कृपापात्र बनूं परन्तु मनुष्य जो विचारता है उस के पूर्ण करने में सदा सफलता प्राप्त नहीं होती है। बाजी की दुष्ट प्रकति से शिवाजी पहिले ही से परिचित थे। उसके कारघाट के निवास ने शिवाजीके हृदय में सन्देह उत्पन्न करा दिया। शिवाजी जिस स्थान पर रहते थे उसको वे केवल सेना ही से सुरक्षित नहीं रखते थे किन्तु गुप्त दूतों द्वारा अड़ोस पड़ोस की व्यवस्था से भी परिचित रहते हुए अपनी अवस्था को दृढ़ रखते थे। शिवाजी के गुप्तचर प्रायः समस्त महाराष्ट्र में भ्रमण किया करते थे। क्या बीजापुर क्या कोंकन सर्वत्र ही एक न एक विश्वासी गुप्तचर रहता था। बाजी का बीजापुर को जाना तथा चन्द्रराव की जागीर में हो कर फारघाट में डेरा डालना शिवाजी के गुप्तचरों से छिपा न था। शिवाजी को सन्देह तो पहिले ही हुआ था किन्तु जब गुप्तचरों द्वारा समस्त समाचार विदित होगया तो उन का सन्देह और भी दृढ़ हो गया।

अब शिवाजी ने विचारा कि यदि श्यामराजे मैत्री-भाव से आया होता तो सम्भावना नहीं कि वह मुझ से न मिलता और यदि वह अपने ही काम से आया होता तो वह ऐसे गुप्त भाव से पड़ा न रहता। इस में कुछ न कुछ अवश्य गूढ़ रहस्य है। सन्देह दृढ़ होते ही शिवाजी ने उस का निरीक्षण करना आरम्भ कर दिया। प्रारम्भ करते ही शिवाजी को उस की धूर्त्तता का पूरा पता लग गया। पूर्णतः उस का आन्तरिक मनोरथ जान कर शिवाजी ने एक रात्रि को अपने सुहृद मित्रों को बुला कर बाजी को परास्त करने की इच्छा प्रकट की। विश्वस्त मावली योद्धागणों को साथ ले कर कुछ रात्रि व्यतीत होने पर शिवाजी फारघाट के निकट पहुंच गये। शिवाजी ने गुप्तचरों द्वारा यह बात जान ली कि बाजी की सेना सुषुप्तावस्था में है अतः धीरे २ चल उस के सन्निकट पहुंच गये। बाजी श्यामराजे उस समय मनोहर स्वप्न देख रहे होंगे। उस समय स्वप्न में कदाचित् यही देखते होंगे कि शिवाजी का सिर काट कर वे सुल्तान के पास पहुंच गये हैं। सुल्तान भी शिवाजी का सिर देख कर अति प्रसन्न हो रहे हैं। पश्चात् पुरस्कार में उन को विस्तृत भूमि-भाग दे सम्मानित कर रहे हैं पर यहां तो दूसरी अवस्था थी।

जिन का सिर काट कर वे सुल्तान के पास ले गये थे वह स्वयं खड्ग लिये उन्हीं के सिर पर कृतान्त की तरह खड़ा हुआ था।

वाजी की सेना पर अचानक आक्रमण हुआ हड़-बड़ा कर वाजी के सैनिकों ने देखा कि काल के सदृश वीर मावली उन के मध्य में भीषण रूप धारण किये हुए उनका सर्वनाश कर रहे हैं। विराट चीत्कार करती हुई वाजी की सेना भी उठ बैठी। दोनों में घोर युद्ध होने लगा परन्तु वीर मावलियों से विजय-लक्ष्मी का लेना वनराज के पञ्जे से मांस-पिण्ड को छीन लेना है। कलुषित पापियों के हृदय सदा से ही निर्बल होते हैं तो फिर वाजी की सेना मावलियों के सम्मुख क्यों कर ठहर सकती थी। थोड़ी देर युद्ध करने के पश्चात् वाजी समर छोड़ कर पलायित हुआ। भागते हुए शत्रु को मारना नीति-विरुद्ध है यह समझ कर शिवाजी ने उस का पीछा न किया। 'जान बची लाखों पाये' यही समझ कर वाजी प्रसन्न हुए। समर भूमि से भाग कर जंगलों में छिपता हुआ भग्नाशा से बीजापुर पहुंचा। शिवाजी भी विजय-मुकुट धारण कर सहर को लौट आये। अपना काला मुंह ले कर वाजी श्यामराजे सु-ल्तान के पास जा पहुंचे। सुल्तान भी समस्त हाल सुन कर जल भुन गये पर करते क्या?

शिवाजी को चन्द्रराव की ओर से भी भय रहता था और उस भय को सुहृद् भाव में परिवर्त्तित करने के लिये शिवाजी ने अनेक प्रयत्न किये पर कुछ फल न निकला। चन्द्रराव अपने को चाणक्य का सहोदर भ्राता ही समझता था अतएव शिवाजी भी उस की ओर से चौकन्ने रहते थे। प्रकाश में तो वह शिवाजी से प्रेमभाव रखता और भीतर ही भीतर उन की जड़ काटने का प्रयत्न करता पर शिवाजी की आंखों से उस का यह चाणक्यपन छिपा न रह सका। यवन-नरेश-प्रेरित जब श्यामराजे शिवाजी के वध करने के निमित्त आया था तो उसे टिका कर चन्द्रराव ने शत्रुता के चिन्ह दिखलाये थे। पर शिवाजी ने इस पर अधिक ध्यान न दे कर शत्रु-साधना के स्थान पर मैत्रीभाव स्थापन करना चाहा। स्वजातीय शत्रु को पहिले मित्र बनाने का यत्न शिवाजी सदा करते थे यह उन का जातीय प्रेम सूचक नियम था। जब इस चेष्टा में वे विफल होते थे तो उग्ररूप धारण कर उस की शक्ति का ध्वंस करते थे। शिवाजी ने अपने दूतों द्वारा हिन्दुओं की वर्त्तमान अवस्था दिखलाते हुए उस के हृदय में यवन-विद्वेष-वन्हि भड़काने का यत्न किया पर उस के कलुषित हृदय में स्वदेशभक्ति-सूचक मंत्र स्थान प्राप्त न कर सका प्रत्युत उस ने गुप्त रूप से

शाह की सहायता करनी आरम्भ कर दी । शिवाजी ने ये सब बातें जान कर जावालि का दमन करना ही ठीक समझा। शिवाजी ने चन्द्रराव को लिख भेजा कि श्यामराजे अपनी सेना सहित बीजापुर की ओर गया है। मैं उस का पीछा करना चाहता हूं इसलिये मेरी सेना आप की जागीर से हो कर जायगी। आप उस के निमित्त अन्नादि का प्रबन्ध कर दीजियेगा। भक्ष्य पदार्थों का देना तो अति दूर रहा उस ने जागीर से सेना के जाने की भी आज्ञा न दी। उस को इस बात का भय था कि अतिक्रमण करने वाली सेना हमारी ही जागीर को हड़प न कर जाय। उस के निषेध ने शिवाजी की इच्छा को पूर्ण कर दिया। परन्तु इस समय वे खुल्लम खुल्ला चन्द्रराव से युद्ध करना नहीं चाहते थे। उस का सैन्य-बल शिवाजी से किसी प्रकार भी न्यून था परन्तु तो भी इस स्वदेश-शत्रु की जागीर पर हस्तक्षेप करना अति प्रयोजनीय था। हिन्दू-संस्कारों से संस्कृत चन्द्र-राव अपने सैन्य-बल पर गर्वित होता हुआ शिवा जी का सामना करने को उद्यत था। सत्य ही उस के राज्य को हस्तगत कर लेना कुछ हँसी ठट्ठा न था क्योंकि उस समय उसकी जागीर एक विशाल सेना से सुरक्षित थी। उसके यहां अच्छे२ अश्वारोहियों की कुछ कमी न थी।

मावलियों की भांति उसकी सेना भी अति प्रचण्ड थी। इन बातों के कारण शिवा जी का जावालि पर विजय पाना कुछ सहज काम न था अतएव उन्हों ने विचारा कि कोई ऐसा यत्न करना चाहिये जिस से चन्द्रराव यवनों का साथ न दे सके और हमारी कामना का बाधक भी न होवे। इस विचार की पूर्त्ति के लिये रघुबल्लाल नामक एक ब्राह्मण को पच्चीस मावलियों सहित जावालि भेजा। उन्हों ने जावालि पहुंच कर चन्द्रराव से कहा कि शिवाजी आपसे विवाह सम्बन्ध करना चाहते हैं। प्रत्यक्ष में तो यह बतलाया गया किन्तु आभ्यन्तरिक भाव उस के बलाबल का परिचय लेना था।

चन्द्रराव ने आवभगत तो खूब दिखाई परन्तु हृदय में शङ्कित ही रहा। दो तीन दिन के बाद उसने आतिथ्य-सत्कार में भी हाथ ढीला कर दिया और बात चीत में कुछ अनिच्छा प्रकट करने लगा। तब तो शिवाजी के दूत को अतीव क्रोध आया। प्रति दिन का असत्कार उन के क्रोधानल में घृताहुति का काम करने लगा। अन्त में उसका फल यहा हुआ कि रघुबल्लाल ने एक दिन शस्त्राघात कर चन्द्रराव तथा उस के भाई को यमपुरी पहुंचा दिया। ※ इस भीषण कर्म्म के उपरान्त

※ इतिहासकारों ने इस विषय पर लिखा है कि राजा तथा राजसहोदर रघुबल्लाल सहित एक घर में बातचीत कर रहे

जीवन-रक्षणार्थ रघुवल्लाल अनुपुरी से भाग कर महाब-लेश्वर आया। वहां आ कर उसने समस्त समाचार शिवाजी के पास भेजा। शिवाजी ने जावालि पर आ-क्रमण किया परन्तु जावालि-मन्त्री हिम्मतराव तथा मोरे के पुत्रों ने बड़ी वीरता से शिवा जी का सामना किया। युद्ध में हिम्मतराव पञ्चत्व को प्राप्त हुए और लड़के शिवाजी के हाथ बन्दी हुए। इसके उपरान्त व-सोता* के दुर्गाध्यक्ष को पराजित कर जावालि पर पूर्ण अधिकार कर लिया। शिवाजी के व्यवहार से सब लोग परम प्रसन्न हुए पर पुत्रों ने बीजापुर को लिख भेजा कि शिवाजी ने हम लोगों की ऐसी दुर्दशा की है। उस के निमित्त उन्हों ने शाह से शिवा जी के मार भगाने के लिये सहायता मांगी। शिवाजी ने जब यह सब हाल सुना तो उन्हों ने विचारा कि ऐसे कण्टकों का रहना सर्वथा अनुचित है। उन्हों ने उनके प्राणदण्ड की आज्ञा दे कर शान्ति स्थापित की।

शिवाजी धोखे में शत्रु का वध करना अति अनु-चित समझते थे। अतएव उन्होंने रघुबल्लाल के अन्या-

---

थे। वहीं पर यह हत्याकाण्ड हुआ था। शिवाजी ने बल्लाल के कर्म पर असन्तोष प्रकट किया था।

* वसोता का नाम बदल कर शिवाजी ने उस का नाम वज्रीरगढ़ रक्खा था।

अनुचित कर्म पर असन्तोष प्रकट कर उन को अपनी मुसलमान सेना का अधिपति बना दिया । रघु-सदृश अधीर पुरुषों का यवनों से ही संसर्ग अच्छा रहेगा। यही विचार कर शिवाजी ने ऐसा किया था क्योंकि दोनों की प्रकृति एकसी है । यहां पर पाठकगण चौंके होंगे कि शिवाजी के सैन्य में मुसलमान कहां से आ पड़े ? । शिवाजी यद्यपि कट्टर हिन्दू थे और हिन्दू धर्म्म पर उन का दृढ़ विश्वास था, उन्होंने हिन्दू-धर्म्म एवं स्वतन्त्रता के लिये यवनों से युद्ध करने के लिये डंका भी बजाया था । परन्तु उन का कुछ मुहम्मदी मत से द्वेष न था । वे वीरों का एक सा आदर करते थे । शिवाजी में ही केवल यह बात न थी किन्तु उन के पूर्व पुरुषों में भी यह गुण था । न तो शिवाजी ने कभी कुरानों को जलवा कर तापा था और न मसजिदों को भग्न करवा कर उन के स्थान पर हिन्दू-मंदिर बनवाये थे । ये समस्त गुण औरङ्गजेब सदृश यवन सम्राटों में हीं पाये गये हैं अतएव धर्म्मान्ध मुसलमानों को छोड़ कर सब ही शिवाजी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। ऐसे बहुत से मनुष्य शिवाजी के झण्डे के नीचे आ गये। मुसलमान सेना में प्रायः अधिक लोग वे ही थे जिन्हों ने किसी कारण से हिन्दू-धर्म्म-पथ त्याग कर यावनी

मत ग्रहण कर लिया था परन्तु हार्दिक झुकाव उन का अपने पूर्व धर्म्म की ही ओर रहा।

जावालि के विजय करने के पश्चात् वहाँ का राज्य-कार्य अपने हाथ में लिया। प्रजा को सब प्रकार से सुखी तथा प्रसन्न रखने के लिये शिवाजी ने किसी प्रकार की भी त्रुटि न की। शीघ्र ही जावालि-वासी शिवाजी के मधुर भाषण तथा सद्व्यवहार के कारण अति प्रसन्न हो गये। यहाँ तक कि उन को परिवर्त्तन सुखकर तथा सौभाग्य-मय प्रतीत होने लगा। कुछ दिनों के पश्चात् शिवाजी को यह ज्ञात हुआ कि जावालि-जागीर के अड़ोस पड़ोस के जागीरदार तथा नायकगण चन्द्रराव से सहानुभूति रखते हैं अतएव शिवाजी उन की ओर से कदापि निः-शंक नहीं रह सकते थे। इन सभों में रोहिरा का दुर्गा-ध्यक्ष बन्दल भी था। विरोधाचरण के कारण वह शीघ्र ही शिवाजी की क्रोधाग्नि में आहुति हो गया। एक दिन मावलियों ने उस के गढ़ पर आक्रमण कर ही दिया। दुर्गवासी प्राणपण से गढ़ की रक्षा करने लगे। दुर्ग में सैनिकों को उत्तेजना देने वाला बन्दल का सहा-यक बाजीप्रभु देशपाण्डे भी थे। थोड़ी देर के युद्ध में दुर्गाधीश का सिर धड़ से पृथक् हो गया। अध्यक्ष की मृत्यु से सेना में हलचल मच गयी परन्तु वीर बाजी-

प्रभु किञ्चित् भी विचलित न हो कर स्थानभ्रष्ट न हुआ। शिवाजी की सेना के आक्रमणों को वह बराबर रोकता रहा। रोकते २ उस का शरीर क्षत विक्षत हो गया परन्तु वह अपने स्थान से तिलभर भी न हटा। अनेक योद्धा भूतलशायी होने लगे पर बाजी प्रभु पूर्ववत् अपनी सेना को उत्तेजना देता रहा।

दूर से खड़े हुए शिवाजी उस के विलक्षण धैर्य एवं प्रभुभक्ति को देख रहे थे। अपने साथियों से बाजी प्रभु की प्रशंसा करते हुए शिवाजी ने यह विचारा कि यदि ऐसा वीर पुरुष हम को मिल जाय तो बड़ा काम निकलेगा। शिवाजी ने देखा कि दुर्गरक्षा में वह अक्षम है पर साथ ही अपने प्राणों को दे कर भी अपने स्थान से नहीं हटेगा। ऐसे वीर का पृथ्वी पर से उठ जाना ठीक नहीं है यह विचार कर शिवाजी ने एक दूत को उन के पास भेजा। दूत ने जा कर उन से कहा कि दुर्ग की रक्षा होना अब नितान्त असम्भव है और शिवाजी गुणग्राहक हैं अतएव अब तुम आत्मसमर्पण कर दो। बाजीप्रभु पहिले ही से शिवाजी की वीरता से परिचित था। उस की स्वयं यह इच्छा थी कि उस को कोई ऐसा अवसर प्राप्त हो कि देश की सहायता के निमित्त शिवाजी के साथ रह सके। उस ने विचारा कि इस से बढ़

कर और कोई सुअवसर नहीं मिल सकता है। यही विचार कर उस ने आत्मसमर्पण कर दिया। छाती से लगाते हुए शिवाजी ने बाजी प्रभु से कहा कि आज से तुम मेरे सहायक ही नहीं किन्तु मित्र भी हो गये। देखो, मैं इस समय पददलित भारतभूमि को यवनों से बचाने के लिये उद्यत हुआ हूं। ऐसे समय में हिन्दूमात्र को मेरी सहायता करना उचित है। तुम वीर हो, स्वामिभक्त हो अतएव मुझ को तुम से सब प्रकार की आशा है। शिवाजी की प्रेममयी वाणी को सुन कर मरणासन्न बाजी प्रभु का हृदय खिल गया। जोश में आ कर उसने कहा 'वीरवर! यह शरीर अब आप का है। यदि यह शरीर आप की तथा देश की सहायता के निमित्त काम आ सकेगा तो मैं अपने क्षुद्र जीवन को सार्थक समझूंगा।' शिवाजी ने ऐसे वीरपुङ्गव को सदा अपने साथ रखना विचारा। बाजी प्रभु भी आजन्म देश-सेवा में तन मन से लगे रहे।

इस के उपरान्त नये जीते हुए देशों की रक्षा के लिये कृष्णातट के विशाल पर्वत-शृङ्ग पर एक वृहत् दुर्ग निर्माण करवाने की आवश्यकता समझी। दुर्ग-निर्माण कराने का भार मोरो त्रिमल पिङ्गले नामक एक सुयोग्य ब्राह्मणकुमार पर पड़ा और देश का शासनभार मन्त्री-

कर श्यामराजे पन्त को अर्पण किया गया। पिङ्गले ने दुर्ग बनवा कर तैयार कर दिया। शिवाजी ने उस का नाम प्रतापगढ़ रक्खा। श्यामराजे ने अपने पद पर ऐसी सुख्याति प्राप्त कर ली कि शिवाजी ने प्रसन्न हो कर सन् १६५६ में पेशवा की उपाधि से सुशोभित किया। श्यामराजे शिवाजी की सेना के एक सेनानी भी थे। इन उपर्युक्त विजयों से शिवाजी की शक्ति प्रतापगढ़ के दक्षिण भाग से ले कर पन्हाल तक विस्तृत हो गई थी। कोकण का दक्षिणीय भाग जिस में पालविस् तथा सुर्वी वंशीय जागीरदार थे शिवाजी के अधिकार में आ गया था। यद्यपि शिवाजी ने सीदी के सूबे पर आक्रमण किया पर उस समय उस का कुछ फल न निकला था।

इन घटनाओं के पश्चात् शिवाजी का बीजापुर से खुल्लमखुल्ला युद्ध छिड़ गया जिस का वृत्तान्त आगे दिया जायगा।

नवम परिच्छेद ।

मुगलों से प्रथम मुठभेड़ ।

पूर्व इस के कि शिवा जी की मुग़लों से मुठभेड़ का हाल लिखा जाय यह अच्छा होगा कि मुग़लों की दशा दक्षिण में वर्णित कर दी जाय । मुग़ल सम्राटों में सब से पहिले अकबर ने दक्षिण में हस्तक्षेप किया था । उन्होंने खानदेश, असीरगढ़ तथा बरार को मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था । अहमदनगर का दुर्ग भी मुगलों के हाथ में आगया था । बीजापुर और गोलकुण्डा ने भी अकबर के आतङ्क में आकर कुछ कर देना स्वीकार कर लिया था । जहांगीर ने भी दक्षिण में मुगल अधिकार बढ़ाने की चेष्टा की थी परन्तु उसका कुछ फल न निकला । अहमदनगर एक बार मुगलों के हाथ से निकल गया था पर येनकेन प्रकारेण उस पर पुनरधिकार कर लिया गया था । जिस समय शाहाजहां मयूर-सिंहासन पर सुशोभित हुए उस समय निज़ामशाही का अन्त होगया । गोलकुण्डा और बीजापुर ने मुग़ल-आधिपत्य * स्वीकार कर लिया । सन् १६३६ में

* आधिपत्य का तात्पर्य्य यह नहीं है कि उक्त राज्यों की स्वच्छन्दता में कुछ विघ्न पड़ा हो ।

शाहजहां का तृतीय पुत्र औरङ्गजेब दक्षिण का प्रथमवार सूबेदार होकर आया। इस समय औरङ्गजेब की अवस्था प्रायः १८ वर्ष की थी। दक्षिण में आकर उसका प्रथम कार्य्य यह हुआ कि उसने शक्तिहीन अहमदनगर के अन्तिम सुलतान को जिस को शाहजी ने इस पद पर आसीन किया था बन्दी कर ग्वालियर के दुर्ग में भेज कर निज़ामशाही का नाम मिटा दिया। सन् १६४३ में औरङ्गजेब इस पद को त्याग कर चला गया। अपने प्रथम शासनकाल में उसने केवल बागलाना प्रदेश को जीता था। इस समय दक्षिण में मुग़ल साम्राज्य दौलताबाद, तेलिंगाना, खानदेश और बरार तक पहुंच गया था। पश्चिमीय घाट का भी कुछ भाग मुगलों ने हथिया लिया था।

सन् १६५२ में औरङ्गजेब पुनः दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। बीजापुर और गोलकुण्डा पूर्ववत् कर देते रहे थे। इस वार औरङ्गजेब का प्रथम आक्रमण गोलकुण्डा पर हुआ। इस समय गोलकुण्डा राज्य का वज़ीर मीर-जुमला था। नव्वाब अब्दुल्ला से उस की न पटी अत-एव उस को वहां से भागना पड़ा। मीरजुमला वहां से भाग कर औरंगजेब की शरण में आया। औरङ्गजेब मीर-जुमला के ऊपर नव्वाब द्वारा अत्याचार का बहाना लेकर

गोलकुण्डा पर आक्रमण किया। सम्राट् शाहजहां ने औरङ्गजेब के इस काम से असन्तोष प्रकट किया पर जब औरङ्गजेब नें मीरजुमला को राजधानी में भेजा और सम्राट् से जब उस की बातचीत हुई तो उस ने अपनी अनुमति देदी। गोलकुण्डा की पराजय हुई। शाह अब्दुल्ला को औरङ्गजेब के निश्चित किये हुए सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा। सन्धि-पत्र में अब्दुल्ला को इस बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी कि दिल्लीश्वर का आधिपत्य स्वीकार कर वह उनके नाम का सिक्का ढलवावेगा और औरङ्गजेब के ज्येष्ठ पुत्र के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देगा ※। कर स्वरूप में उसको दस लक्ष रु० वार्षिक देना पड़ेगा §। सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद औरङ्गजेब औरङ्गाबाद ‡ को चला गया।

※ किसी २ का यह भी मत है कि औरंगजेब ने इस बात की प्रतिज्ञा करवा ली थी कि वर्त्तमान शाह की मृत्यु के बाद उस का पुत्र शाह होगा।

§ यदि औरंगजेब का वश चलता तो यह सन्धि कदापि भी न होती। उसकी इच्छा यही थी कि गोलकुण्डा का चिन्हमात्र भी मिटा दिया जाय परन्तु सम्राट् की ऐसी इच्छा न थी।

‡ उस समय औरंगाबाद ही मुगल दक्षिण की राजधानी थी।

वहां जाकर उसने बीजापुर से बीदर दुर्ग छीन लेना विचारा। मीरजुमला इस समय कर्णाट से लौट आया था। औरङ्गजेब से औरङ्गाबाद में मिल कर बीजापुर पर चढ़ाई की। चढ़ाई का फल यह निकला कि कल्याणी तथा कुलबर्गा मुग़ल राज्य में आगये। अब हम उस समय पर आ गये हैं जब कि शिवाजी ने जावालि-जागीर को जीत लिया था।

मुग़लों से शिवाजी के वंश का नाम मात्र का सम्पर्क रहा। शाह जी एक बार मुग़ल अधीनता में चले गये थे। इसके उपरान्त वे बीजापुर चले आये पर जिस समय शाहजी को बीजापुर के शाह ने शङ्कित होकर वहां बन्दी कर लिया था उस समय शिवाजी ने उनको मुक्त कराने के लिये शाहजहां के पास प्रार्थना-पत्र भेजा था जिसका उल्लेख गत परिच्छेद में किया जाचुका है। अपना काम पूरा हो जाने से शिवाजी ने शाहजहां की बात पर ध्यान देना आवश्यक न समझा अतएव वह बात वहीं रह गई। थोड़े दिनों के पश्चात उत्तरीय भारत में महान् परिवर्त्तन हुआ। सन् १६५६ में शाहजहां रोगग्रस्त हुए। रोग के कारण वे कई दिनों तक दरबार में उपस्थित न हो सके। उनकी दरबार की अनुपस्थिति ने दरबारियों के हृदय में शङ्का उत्पन्न करवादी।

उन को भासित होने लगा कि दारा ने विष-प्रयोग द्वारा सम्राट् के प्राण हरण कर लिये हैं। मुसलमान दरबारी प्रायः दारा के अभिमान तथा उद्धत स्वभाव के कारण अप्रसन्न एवं असन्तुष्ट रहते थे। दारा का हिन्दू धर्म्म की ओर प्रेम देख कर कट्टर मुसलमान उस से भीतरी द्वेष रखते थे। वे समझते थे कि यदि यह काफ़िर शाहंशाह होजायगा तो हम लोगों की कुशल नहीं है। दारा को भी ऐसे मनुष्यों से घृणा थी। इन सब कारणों से दरबार में दो विभाग होगये थे। दरबारियों का वह भाग जिस में कट्टर मुसलमान सम्मिलित थ औरङ्गजेब को दिल्लीश्वर बनाना चाहता था और द्वितीय भाग जिस में शाहजहां की पुत्री जहानआरा सम्मिलित थी दारा को दिल्ली के मयूरसिंहासन पर आरूढ़ देखना चाहता था। इस में यशवन्त सिंह आदि थे।

सम्राट् के शय्याशायी होने के उपरान्त औरङ्गजेब के पास पत्र प्रेषित किये जाने लगे। उन को लिखा गया कि यदि आप उचित समय पर नहीं आआवेंगे तो दारा दिल्लीश्वर होजायगा और पाक मुहम्मदी धर्म्म का विनाश होजायगा। उसका गद्दी पर बैठना और हम लोगों के जीवन-काण्ड की समाप्ति साथ ही साथ होजायगी। इस समय औरङ्गजेब बीजापुर से युद्ध कर

रहा था। शाहज़ादा मुराद शराब में मस्त गुजरात के प्रदेशों में आनन्दपूर्वक आखेट कर रहा था। वीर शुजा बंगाल में स्थित था और सम्राट् का प्रियपुत्र होने के कारण दारा दिल्ली में ही रहता था। सम्राट् की भी यही इच्छा थी कि मेरे बाद दारा ही इस सल्तनत का शासक होवे। थोड़े ही दिनों में शाहजहां की मृत्यु की झूठी खबर देश भर में फैल गई। दूरस्थित शुजा तथा मुराद भी सचेत होगये। औरङ्गजेब ने भी बीजापुर छोड़ने का विचार किया पर वह बड़ी अड़चन में पड़ा। वह जानता था कि मुहम्मद आदिलशाह से दारा की मैत्री है। ऐसे समय में यदि वह दारा का पक्ष ग्रहण करेगा, तो मैं बड़ी आपत्ति में पड़ूंगा। सामने से दारा और पीछे से मुहम्मद आदिलशाह मुझे भून डालेंगे पर सन् १६५६ ई० में मुहम्मद आदिलशाह काल के गाल में जा पड़े और उन के स्थान पर अली आदिलशाह तख़्त पर बैठे। इस शाह से भी औरङ्गजेब को वही भय था अतएव आदिलशाह के बैठने पर उस ने आपत्ति की। उस ने कहला भेजा कि तुम किसी अवस्था में बीजापुर के तख्त पर नहीं बैठ सकते हो। इस का कारण उस ने यह बतलाया कि जब तुम दिल्लीश्वर का आधिपत्य स्वीकार कर

चुके हो तो बिना दिल्लीश्वर की आज्ञा के सिंहासना-रूढ़ क्यों कर हो गये हो। तुम ने यह कार्य्य सम्राट की इच्छा के प्रतिकूल किया है। दूसरा कारण उस ने यह बतलाया कि तुम बीजापुर के राजसिंहासन के उचित उत्तराधिकारी नहीं हो क्योंकि सम्राट् को तुम्हारे औरस पुत्र होने में सन्देह है अतएव तुम को चाहिये कि यातो सम्राट् की आज्ञा मंगाओ या तख्त खाली करो परन्तु आदिलशाह मानने वाले पुरुष नहीं थे। भला हाथ में आये हुए तख्त को कौन मूर्ख छोड़ देने पर तैयार होगा। निदान उन्हों ने औरङ्गजेब की बात पर किञ्चित् ख्याल न दिया। फिर क्या था सहस्रशः मुग़ल सेना बीजापुर पर चढ़ दौड़ी। कूट-नीति—विशारद औरङ्गजेब ने स्वदेश-द्रोहियों का अनुसन्धान करना प्रारम्भ कर दिया। भीरु विभीषणों की कमी वहां न थी। गृहभेदियों से औरङ्गजेब ने बहुत सहायता प्राप्त की। मुग़लों के अचानक आक्रमण ने अली आदिलशाह को स्तम्भित कर दिया। यद्यपि श्रीजी घाटे, बाजी घोरपड़े तथा निम्बालकर ने भी बीजापुर को सहायता दी परन्तु मुग़लों के सम्मुख टिक न सके। आदिलशाह का गर्व खर्व हो गया। नम्र भाव धारण कर सन्धि के लिये प्रार्थना-पत्र भेजा।

प्रार्थना-पत्र में एक कोटि मुद्रा देने की भी प्रतिज्ञा थी पर औरङ्गजेब वह मनुष्य न था जो बीजापुर को बिना ध्वस्त किये हुए छोड़ता।

इसी समय औरङ्गजेब को दिल्ली के समाचार मिले तो बड़ी चिन्ता हुई। यदि वह दिल्ली की ओर बढ़ता है तो जीता हुआ बीजापुर हाथ से जाता है और यदि बीजापुर में रहता है तो दारा भारत का सम्राट् हुआ जाता है। 'भई गति सांप छछूंदर केरी,' वाली कहावत चरितार्थ हो गई। जब वह इसी विचार में संलग्न था उसको खबर लगी कि बङ्ग देश से वृहत् सेना सहित शुजा दिल्ली की ओर बढ़ रहा है। उधर गुजरात से मुरादबख्श भी ससैन्य दिल्ली को जा रहे हैं और दारा इन दोनों के रोकने का यत्न कर रहा है। औरङ्गजेब ने बीजापुर को छोड़ना विचारा। बीजापुर से सन्धि कर वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। उसने विचारा कि यदि इस समय हम को शिवाजी की सहायता मिल जाय तो बड़ा काम चले * अतएव उसने शिवाजी को लिख भेजा कि जो पत्र तुम ने सम्राट् शाहजहां को लिखा था उस

* शिवाजी की शक्ति से औरङ्गजेब इस समय परिचित हो गया था। शिवाजी की युद्ध कुशलता ही के कारण वह उनको अपनी सहायता के लिये चाहता था।

की सब शर्तें मुझे मंजूर हैं अतएव तुम को पूर्व प्रतिज्ञानुसार अश्वारोहियों सहित नर्मदा के दक्षिणीय भागों की रक्षा करनी चाहिये और थोड़े से अश्वारोहियों सहित सम्राट् की सहायता करनी चाहिये । पत्र के देखते ही शिवाजी ने औरङ्गजेब के हृदय की थाह पा ली । प्रत्युत्तर में शिवाजी ने औरङ्गजेब को लिख भेजा कि "मेरी सेना विद्रोहाचरण में भाग नहीं ले सकती है अब मैं सहायता देने में असमर्थ हूं ।" औरङ्गजेब टकासा उत्तर पा कर चुप हो गया । इस समय औरङ्गजेब के हृदय में शिवा जी के प्रति विशेष द्वेष उत्पन्न हुआ । पुत्र मोअज्जम को दक्षिण में छोड़ कर औरङ्गजेब अपने कपट जाल में मुराद को फांसने चला । मुरादबख्श उस के चंगुल में फस गया जिस के कारण उस की अन्त में मृत्यु हुई । सामूगढ़ *के विशाल क्षेत्र में औरङ्गजेब ने जय पाई और दारा पराजित हो कर भाग गया ।

शिवा जी ने इस समय विचारा कि असत् कार्य्य में सहायता न देनेके कारण औरङ्गजेब क्रोधित तो हो ही गया है तो वह समय अब अति सन्निकट है कि जब हम को इस के साथ युद्ध करना पड़ेगा अतएव हम को सब प्रकार

---

* सामूगढ़ को बा० हरिश्चन्द्र ने श्यामगढ़ के नाम से पुकारा है ।

से युद्ध के लिये तैयार हो जाना चाहिये। उन्होंने स्वतः ही मुग़ल प्रान्त पर आक्रमण करना विचारा। इस में उन्हों ने दो बातें सोची थीं। प्रथम तो आक्रमण से कुछ धन प्राप्त हो जायगा और दूसरे औरङ्गजेब को ज्ञात हो जायगा कि शिवाजी ने सहायता देने के बदले क्या किया है। यह प्रथम ही मौक़ा था कि महाराष्ट्र-केशरी ने उन मुग़लों पर जिन के प्रचण्ड प्रताप ने अहमदनगर का गर्व खर्व किया था, जिन्होंने बहादुरशाह सरीखे गुजरात नरेश को धूल में मिला दिया था, जिन के यहां यशवन्त सिंह तथा जयसिंह सदृश सेनानी का काम कर रहे थे, आक्रमण करना विचारा। इस विचार का शिकार मुगलों का जूनार नगर ही हुआ। इस समय तक मुग़ल राज्य की प्रजा अपने को महान् शक्ति द्वारा शासित होने के कारण निरापद समझती थी परन्तु सन् १६५७ के मई मास की एक रात्रि को नगर में खलबली पड़ गई। सहसा नगरवासी चकित मृगों की नाईं महाराष्ट्र सिंहों से घेर लिये गये। देखते ही देखते मावलियों ने नगर को लूट लिया। शिवाजी को इस नगर में बहुतसा धन तथा बहुमूल्य वस्त्र और चारसौ अश्व प्राप्त हुए। प्राप्त धन को रायगढ़ भिजवा दिया। शिवाजी इतने से ही शान्त न हुए उन्होंने अहमदनगर तक धावे मारने शुरू कर दिये। इन

आक्रमणों में शिवा जी का ध्यान पीढ़ा की ओर गया। ध्यान का जाना ही था कि अश्वारोहियों ने पीढ़ा जा दबाया। मावलियों के आक्रमण से पीढ़ावाले भाग खड़े हुए। इस बार मुग़लों ने उन पर पीछे से हमला किया पर महाराष्ट्र किञ्चित् भी विचलित न हो कर युद्ध करने लगे। अन्त में मुग़ल भाग गये। शिवा जी को इस लूट में ७७० अश्व, ४ हाथी और बहुत सा धन मिला। शिवा जी के इस समय के मुग़ल प्रदेशों के आक्रमणों में यह अन्तिम आक्रमण था। इस के पीछे शिवा जी और कामों में लगे। अपरिमित धन संग्रह कर शिवा जी पूना लौट आये। आते ही सेना तथा अश्वों का संग्रह अति शीघ्रता से करने लगे। अब उन्होंने दो और सेनाएँ बनाईं। एक का नाम 'बारगीज़' और दूसरी का नाम 'सिलीदार'* था। ये नवीन सैनिक नेताजी पालकर की अधीनता में रक्खे गये।

शिवा जी की इस नूतन शक्ति की उन्नति देख कर बीजापुर के शाह के पेट में चूहे कूदने लगे। उन को भासित होने लगा कि एक न एक दिन महाराष्ट्रों की ध्वजा बीजापुर पर फहरायेगी। इसी विचार के कारण

---

*यह नाम प्राचीन है। बहमनी राज्य के समय में एक सेना इसी नाम से सम्बोधित होती थी।

बिचारे का रक्त प्रतिदिन शुष्क होता जाता था। अब उसने विचारा कि औरङ्गजेब भी शिवा जी से बिगड़ गया है। ऐसे समय में औरङ्गजेब से पुनः सन्धि कर अपने को सुदृढ़ तथा सुरक्षित करलूं। जिस समय बीजापुराधीश बिना औरङ्गजेब से सन्धि किये हुए अपना निस्तार नहीं देखते थे उस समय औरङ्गजेब मुराद सहित आगरे पहुंच गया था। दुराशा की अवस्था में दारा भी राजपूताने की मरु भूमि में भ्रमण करता हुआ राज्य प्राप्त करने के यत्न में लगा हुआ था। मुरादबख्श को अन्त कर तथा पिता को कारागार में डाल कर सन् १६५८ में औरङ्गजेब मयूर-सिंहासन पर बैठा। उस के हृदय में दारा और शुजा विष-कण्टक की तरह चुभते थे। जिस समय दारा और शुजा का अन्तिम हाल शिवाजी ने सुना तो उन्होंने ख्याल किया कि जिस मनुष्य ने अपने हाथों को भ्रातृरक्त से रञ्जित किया है, जिस दुराचारी ने पितृस्नेह को त्याग कर अपने पूजनीय पिता को कारागार में डाला उस के साथ सुहृद्भाव रखना नितान्त मूर्खता है।

शिवाजी औरङ्गजेब की बढ़ती हुई शक्ति को भी देख रहे थे अतएव उन्होंने उस को इस समय चिढ़ाना उचित न समझा। उधर बीजापुर-शाह ने भी दिल्ली

से सन्धि करली थी अतएव ऐसे समय में सेना का नि-ष्फल कटाना अदूरदर्शिता का काम होगा, यह विचार कर शिवाजी ने थोड़े दिनों के लिये मुग़ल सम्राट् से सन्धि कर शान्ति रखना विचारा अतएव उन्होंने रघुनाथ पन्त को पत्र सहित दिल्ली भेजा। इस पत्र में उन्हों ने मुग़ल प्रदेश पर आक्रमण करने का पश्चात्ताप प्रकट किया था और साथ ही साथ भविष्य में सहायता सम्बन्धी सन्धि भी स्वीकार कर ली थी ※। जब शिवाजी ने जाना कि बीजापुर और दिल्ली में सन्धि हो गई तो उन्होंने कृष्ण जी भास्कर को पीछे से भेजा। इस वार के सन्धि-प्रस्ताव में उन्हों ने इतना और जोड़ दिया था कि मेरी पैतृक जागीर तथा देशमुख पद जो मुगल साम्राज्य में है वह मुझे लौटा दिया जाय तो मैं इस के बदले में सम्राट् के दक्षिणीय सूबों की अपनी सेना द्वारा रक्षा करता रहूंगा। दिल्ली पहुंच कर दूत ने औरङ्गजेब के सम्मुख

※ वास्तव में शिवाजी ने उस समय सन्धिकर अपनी राजनैतिक बुद्धि का परिचय दिया था। यदि उस समय वे सन्धि न करते तो बीजापुर अवश्य उनकी शक्ति नष्ट करने का उद्योग करता और औरङ्गजेब शिवाजी की शक्ति के नाश करने में अवश्य सहायता देते क्योंकि वह स्वयं शिवाजी से असन्तुष्ट था।

शिवाजी के सन्धिप्रस्ताव उपस्थित किये। प्रस्ताव उपस्थित करते समय उसने छलना और कहा कि कोङ्कणदेश जो बीजापुर की अमलदारी में है सर्व प्रकार से अरक्षित है, यदि वह प्रदेश शिवाजी को सौंप दिया जाय तो मुग़लराज्य को बहुत लाभ होगा।

औरङ्गजेब ने यद्यपि बीजापुर से सन्धि कर ली थी तथापि उस को वह छोड़ना नहीं चाहता था §। एक बार मुंह का कौर उस के मुंह तक आकर गिर पड़ा था पर मौका पाते ही पुनः उस को खाजाने को प्रस्तुत था। दक्षिण विजय की लालसा उस के हृदय से उसके मृत्युकाल तक नहीं गई थी। शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति भी उसकी आंखों की ओट नहीं थी। वह यह भी जानता था कि बीजापुर मुझ से सन्धि कर शिवाजी को दमन करना चाहता है और इस प्रकार से दक्षिण में अपनी शक्ति बढ़ा कर शक्तिशाली हुआ चाहता है। इधर वह अपनी दशा भी उत्तरीय भारत में देखता था। वह जानता था कि

§ To his dying day he never for a moment lost sight of his ambition to recover the empire which had once belonged to Mohammad ibn Toghlak. Lane Poole.

भारत में मेरी शक्ति अभी पूर्ण रूप से प्रसरित नहीं हुई है। भाइयों के पक्षपातियों के हृदय में अभी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई है। इस समय यही उचित है कि दक्षिणीय शत्रुओं से सन्धि कर उत्तर में अपनी शक्ति बढ़ाऊं उधर दक्षिण में मेरी इस नवीन सन्धि से दोनों की शक्ति बढ़ने से रुक जायगी और मैं समय पा कर दोनों का नाश कर दूंगा *।

ऐसा विचार कर औरङ्गजेब ने शिवाजी के प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिये किन्तु पैतृक सम्पत्ति के विषय में कहा कि मैं इस पर फिर विचार कर अपना मत प्रकट करूंगा : सन्धि निश्चित हो जाने के पश्चात् औरङ्गजेब शिवाजी को अपने दरबार में पांच हजारी मनसब प्रदान किया। दूत ने दिल्ली से लौट कर शिवाजी को सब हाल सुनाया जिसको सुन कर शिवाजी बहुत प्रसन्न हुए ¶। उपर्युक्त सन्धि के अनुसार शिवाजी

---

* औरङ्गजेब ने अपने चातुर्य्य का परिचय तो दिया किन्तु जो वह सोचता था वह न हुआ जैसा कि आगे ज्ञात हो जायगा।

¶ इस सन्धि में शिवाजी और औरङ्गजेब ने अपनी राजनैतिक पारदर्शिता दिखलाने का यत्न किया था। दोनों ही बीजापुर की घात में बैठे हुये थे।

ने कोङ्कण प्रदेश पर अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। औरङ्गजेब से युद्ध करने के कारण बीजापुर की शक्ति शिथिल होगई थी। देश के प्रायः समस्त दुर्ग जीर्ण हो रहे थे। धनाभाव के कारण अली आदिलशाह ने बहुत सी सेना अपने यहां से पृथक् कर दी थी। उस सेना के बहुत बड़े भाग को शिवाजी ने अपने यहां ले लिया था। इस नवीन सेना के अधिपति रघुवल्लाल निर्वाचित किये गये। गोमाजी नायक ने शिवाजी से कहा था कि इस यावनी सेना को लेकर आप गलती कर रहे हैं पर शिवाजी ने 'कण्टकेनैव कण्टकम्' † कह कर उन को समझा दिया। इस पारगामी दूरदर्शिता ने ने शिवाजी को पश्चात् काल में आशातीत लाभ कराया।

अली आदिलशाह अशिक्षित होने के सिवाय उद्धत स्वभाव के भी थे। इन दोनों कारणों से राज्य कार्य्य सम्पादन भलीभांति नहीं होता था। प्रजा शाह के दुराचरणों के कारण अप्रसन्न रहती थी। घरेलू झगड़ों के कारण बीजापुर दरबार दो भागों में विभक्त हो रहा था। एक भाग तो शाह को राज्यच्युत करने का उद्योग करता था और दूसरा उनकी रक्षा के यत्न में लगा था। राज्य के प्रधान मन्त्री खां मुहम्मद विद्रोहियों के नेता बन बैठे

† अर्थात् यवनों से यवनों का ही संहार कराना।

परन्तु अभी शाह की शक्ति अधिक थी। एक दिन शाह ने आश्वासन-वाक्य देकर मन्त्री को दरबार में बुलाया। काल-प्रेरित मन्त्री दरबार में गया। शाह ने उस को बन्दी कर हाथी के पैर से कुचलवा डाला। उस के पुत्र खवास खां ने पिता का बदला चुकाने का यत्नारम्भ किया। इन षड्यन्त्रों ने शिवाजी को अधिक लाभ हुआ। पारस्परिक विद्रोहों के कारण बीजापुर सरकार ने अपने राज्य को अरक्षित छोड़ दिया। ऐसे समय को पाकर शिवाजी ने कोङ्कणस्थ दुर्गों पर अधिकार कर लिया। दुर्गों पर अधिकार करते समय शिवाजी की फतह खां सीदी से मुठभेड़ हो गई। सीदी एक पराक्रमशील मनुष्य था। बीजापुर की ओर से कोङ्कण प्रदेश में उस ने एक जागीर पाई थी। अपनी जागीर में उसने एक अच्छी भारी सेना तैयार कर ली थी। उसी के घमण्ड पर वह शिवाजी को तृणवत् समझता चला आता था। वह गर्व में आकर कभी २ कह बैठता था कि यदि शिवाजी का मुझ से मुकाबिला पड़े तो मैं उन को मजा चखा दूंगा। अन्त में उस की इच्छा पूर्ण हुई।

श्यामराजे पन्त के सेनापतित्व में महाराष्ट्रीय सेना सीदी पर चढ़ आई। सेना के आगमन का वृत्तान्त उसे पूर्व से ज्ञात हो गया था अतएव वह सब प्रकार से युद्ध

के लिये उद्यत था। श्यामराजे पन्त ससैन्य सीदी की जागीर के मध्य में पहुंच गये। वहां पहुंचते ही फतहखां ने महाराष्ट्रों के पृष्ठ भाग पर घोर आक्रमण किया। अचानक पीछे के आक्रमण ने पन्त के हवास उड़ा दिये। सैन्य होते हुए भी कुछ काल तक उन से कुछ करते धरते न बन पड़ा। अन्त में उन की सेना पीछे हटने लगी। अब सीदी के आक्रमण और भी भीषण होने लगे। सीदी के निरन्तर आक्रमणों को सहन करते हुए वीर महाराष्ट्र एक दम खिटखिटा उठे पर सेनापति की आज्ञा के विरुद्ध कर्म करना महाराष्ट्रीय सैनिकों ने सीखा ही न था। अस्तु, पेशवा की सेना अरि सैन्य को मारती काटती पीछे हट आई *। जिस समय शिवाजी ने वृत्तान्त सुना उन को बड़ा खेद हुआ। खेद का कारण यह था कि यह घटना प्रथम ही हुई जिस में शिवा जी की सेना को पीछे पैर रखना पड़ा था। पहिले तो उन्होंने सोचा कि कदाचित् हमारी सेना निर्बल थी पर जब उन को ज्ञात हुआ कि यह पेशवा

---

* इस युद्ध में पेशवा ने यह भूल की थी कि वह एक दम सीदी के घर में घुस गया। सीदी वहां सब बात से युद्ध के लिये सुसज्जित था अतएव घर में पाकर सीदी को विजय सहज ही में मिल गई।

की कुबुद्धि का फल था तो ऐसे मनुष्य को सेना तथा राज्य का भार देना उचित नहीं समझा। श्यामराजे को पदच्युत कर मोरो त्रिमुल को उस पद पर नियुक्त किया। इस के पश्चात् शिवाजी ने रघुनाथ पन्त के आधिपत्य में सीदी के दमन करने के लिये सेना भेजी। सीदी पेशवा की दुर्बुद्धि के कारण विजय प्राप्त कर मदोन्मत्त हो रहा था पर अब की बार उस को नहीं ज्ञात था कि किस रणपुङ्गव से नासना पड़ा है। सीदी जिस समय आकाश पाताल के कुलावे मिला रहा था उसी समय घोर भीमनाद करते हुए महाराष्ट्रों ने उस को घर दबाया। पूर्व वैर प्रतिशोध के कारण उन का रक्त उबल उठा। दोनों ओर से आक्रमण होने लगे। रघुनाथ-पन्त बार बार घोर आक्रमण करने लगे। सीदी भी उन को सहन करता हुआ अपना लोहा दिखलाने लगा। इसी समय में घनघोर घटाओं ने आ कर दोनों की कामनाओं को दबा दिया परन्तु इस जलपात ने पन्त के हृदय में शान्ति पहुंचाने के स्थान पर निमक छिड़कने का काम किया। उन का भीम-विक्रम दिखलाने की इच्छा मन की मन ही में रह गई और सीदी कुछ काल के लिये बच गया।

———

दसवां परिच्छेद ।

अफ़ज़ल खां ।

सीदी के पराजित करने की एकमात्र इच्छा रघुनाथ पन्त के हृदय में ही रह गई। वर्षा ने एक बार उन की आशालता बहा दी। रघुनाथ पन्त वहां से आ कर दूसरे काम में लगे। इस बार बीजापुर की सहस्रशः सेना शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिये चली आ रही थी। अफजल खां इस सेना के सेनानी थे। यह घटना सन् १६५८—५९ की है।

बीजापुर-नरेश ने जब देखा कि हमारे राज्यरूपी शरीर को शिवाजी रूपी सिंह अहर्निशि काट २ कर भक्षण कर रहे हैं और अपने अङ्ग प्रत्यङ्गों को सुदृढ़ बनाते जाते हैं अतएव अब इन का किसी न किसी तरह दमन करना ही उचित है। यह विचार कर सुल्तान ने एक दिन सभा में शिवाजी के सब कामों की आलोचना की। अन्त में यह कहा कि यदि शिवाजी अधःपतित न किये जायंगे तो बीजापुर राज्य की इति श्री समझना चाहिये। अभी तक हमारा यह ध्यान था कि यह सब शाहजी की दुष्टता का फल है परन्तु यह बात ठीक नहीं है। शिवाजी अपने पिता की आज्ञा का

उल्लंघन कर घोर विद्रोहाचरण कर रहे हैं। शिवाजी के नाश-हेतु बाजी श्यामराजे को भी भेजा पर वह शिवाजी की चालाकियों के सामने ठहर न सका और अन्त में विफलमनोरथ हो कर लौट आया। चन्द्रराव मोरे को भी भड़काया परन्तु वहां सिद्धि तो दूर रही स्वयं बिचारे की जान गई। अब हम को ज्ञात होता है कि शिवाजी का बल रात दिन बढ़ता जाता है। उस के बल को ध्वस्त करने के लिये जब तक एक बड़ी सेना न भेजी जायगी तब तक शिवाजी का बल नहीं टूट सकता।

शाह की बातों को सुन कर उमरावों को कुछ जोश आ गया। अफ़ज़लख़ां नामक एक सरदार उठ ही खड़ा हुआ। और कहने लगा, क्या हम लोग कापुरुष हैं जो एक निकम्मे लुटेरे को पातालपुरी का दर्शन नहीं करा सकते हैं। नहीं २ हम लोगों की नस २ में वीर रक्त बह रहा है। तैमूर और चंगेज़ख़ां का ख़ून अभी हम लोगों में मौजूद है। शिवा जी की क्या हक़ीक़त है कि वह बीजापुर का सामना कर सके। मैं आप लोगों के सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि मैं शिवाजी का जीवित अथवा मृतक शरीर लाकर हुजूर के सिंहासन के तले न डाल दूं तो मेरा नाम अफ़ज़ल ख़ां नहीं। अफ़-

ज़लखां की ऐसी ओजस्विनी प्रतिज्ञा को श्रवण कर सुल्तान एक बार मुग्ध हो गये ।

अफ़ज़लखां बीजापुर दरबार में एक पराक्रमी मनुष्य था । रणचतुर होने के सिवाय वाक्पटु भी था । शरीर का विशाल सङ्गठन, आबनूस का रंग, मुख पर छाई क्रूरता तथा मोटे २ होट और चपटी नाक साफ साफ दर्शाती थी कि अफ़ज़लखां भारतीय न होकर हब्श देश का था । यद्यपि वह अवस्था के अन्तिम भाग में पदार्पण कर चुका था तथापि उस के शारीरिक बल ने उस का साथ नहीं छोड़ा था । इस अवस्था में भी वह अपने बल के सम्मुख अन्य मनुष्यों को तृणवत् समझता था । अपने बल तथा रणचातुर्य के बल पर ही उसने शिवाजी के ध्वंस करने की प्रतिज्ञा की थी । सन् १६५९ के अगस्त मास के अन्तिम भाग में अफ़ज़ल खां पांच हजार अश्वारोही, सात हजार पैदल, कई हजार ऊंट तथा अगणित तोपें लेकर शिवाजी के विनाश को चले । अफ़ज़ल खां ने विचारा कि बिचारा शिवाजी इतनी बड़ी सेना का सामना कदापि भी नहीं कर सकेगा । हमारी उदधि सम सैन्य को देख कर शिवा जी का हृदय थर्राने लगेगा । निस्सन्देह अफ़ज़ल खां का विचार ठीक था । शिवाजी इतनी विजयों के पाने पर भी

बीजापुर के मुक़ाबिले के योग्य न थे। इस समय तक विस्तृत बीजापुर राज्य का सूक्ष्म भाग ही शिवाजी के अधिकार में आया था परन्तु जो भाग शिवाजी के पास आगया था उस में उन की शक्ति पूर्ण रूप से प्रसारित होगई थी। उन प्रदेशों के निवासी शिवाजी से हार्दिक सहानुभूति रखते थे। शिवाजी के प्रेम-सम्भाषण तथा व्यवहार से वे उन के पूर्णतया वशीभूत थे। वे शिवाजी से स्वतन्त्रता का मन्त्र पाकर यवनराज्य का अन्त देखने लगे थे। वे समझने लगे थे कि अब परतन्त्रता का बन्धन उन के सिरों पर से उठ गया। अब स्वच्छन्दता से अपने नश्वर शरीर को देशार्पण करते हुए अपनी जीवन-लीला को समाप्त करेंगे। स्वच्छन्दता के मूल्य को समझते हुए वे यथाशक्ति ऐक्य भाव को बढ़ाते जाते थे परन्तु तत्कालीन कुछ जागीरदार ऐसे भी थे जो यवन-राज्य को अक्षय जान कर शिवाजी का सर्वनाश अति समीप समझते थे अतएव वे शिवाजी को सहायता न दे कर बीजापुर का पक्ष ग्रहण करते थे।

अफ़ज़लख़ां की चढ़ाई ने महाराष्ट्र देश में हलचल मचा दी परन्तु जिस प्रकार समुद्र अपनी टक्करों से पर्व्वत को नहीं हिला सकता है उसी प्रकार अफ़ज़लख़ां की सेना

शिवाजी के हृदय को डवांडोल न कर सकी। इस बार शिवा जी को जागीरदारों से युद्ध करना नहीं था और न जूनार का लूटना था किन्तु अब के जागीरदारों के अधिनायक से लड़ना था। महाराष्ट्रीय अफ़ज़ल ख़ां को छिन्नभिन्न करने के लिये सुसज्जित होने लगे। अपनेअधीनस्थ दुर्गों को शिवाजी अन्न, अस्त्र तथा अन्य युद्धोपयोगी वस्तुओं से परिपूरित कर अफ़ज़ल ख़ां को रोकने के लिये प्रतापगढ़ में जा डटे।

बीजापुर से अफ़ज़ल ख़ां भी मदोन्मत्त गयन्दवत् शिवाजी पर चढ़ चले। सितम्बर मास में उन्होंने ससैन्य बीजापुर को छोड़ दिया। वे सीधे प्रतापगढ़ की ओर न जा कर पुरन्धर की ओर चलने लगे। अफ़ज़लख़ां पूर्व में यहां के एक बार सूबेदार रह चुके थे। वे वर्षा ऋतु में ऐसे स्थानों में सेनाचालन की कठिनाईयों से पूर्णतया अभिज्ञ थे। मावलियों की वीरता का अनुभव किये हुए अफ़ज़लख़ां ने ऐसी ऋतु में शिवाजी पर हठात् आक्रमण करना उचित न समझा अतएव वे वर्षान्तर की प्रतीक्षा करते हुए पुरन्धर की ओर बढ़ते जाते थे। अफ़ज़लख़ां ने जिस समय बीजापुर छोड़ा उसी समय से अपनी क्रूर प्रकृति का परिचय देना आरम्भ किया। अपनी ही हिन्दू प्रजा के मन्दिरों

को समतल करते हुए, मूर्त्तियों को तोड़ते हुए, हिन्दू ग्रामों में अग्नि-संस्कार करते हुए यवन सेनापति तुलजापुर तक पहुंचे। यहां भी अच्छे २ मन्दिर थे। मन्दिरों को देखते ही अफ़ज़लखां ने महमूद ग़ज़नी का स्वरूप धारण किया। देखते २ सब मन्दिर भूतलशायी हो गये। मूर्त्तियों का जितना निरादर हो सका अफ़-ज़लखां ने उतना निरादर किया। हिन्दू-ग्रामों को लूटते और फूंकते हुए खां साहब पन्धरपुर आ पहुंचे। यहां भी राक्षसी लीला को देखने के इच्छुक यवन सेनानी ने हिन्दुओं पर अत्याचार किये जाने की आज्ञा दी। अत्याचार ने रौद्र-रूप धारण कर ग्रामों को श्मशानवत् बना दिया। हिन्दू प्रजा त्राहि २ करती हुई इतस्ततः भागने लगी। यवनों ने अपने पैशाचिक कर्म पर मन्द मन्द हास्य करते हुए सेनापति से अपनी समस्त शूरता का आद्योपान्त वर्णन किया। सेना के वीभत्स कर्म श्रवण कर अफ़ज़लखां खिल गये। कदाचित् अफ़ज़लखां, यह विचार कर कि काफ़िर हिन्दुओं के लिये यह उचित दण्ड है, प्रसन्न हुए हों। अफ़ज़लखां के उक्त कर्म्मों से यह साफ़ मालूम होता है कि उनका द्वेष केवल शिवाजी से ही न था किन्तु हिन्दू धर्म से भी था। राजकर्मचारी का अपने राज्य की प्रजा पर ऐसा नीच अत्याचार क्या युक्ति-सङ्गत

हो सकता है ? कदापि नहीं। धार्म्मिक विद्वेष को ले कर अफजल खां बीजापुर से चले थे। वे एक ईंट से दो पक्षी मारना चाहते थे। उक्त घटनाओं से यह प्रतीत होता है कि शिवाजी के नाश के साथ ही वह हिन्दू धर्म्म के नाश करने का यत्न भी कर रहा था।

शिवाजी ने जब यह समस्त वृत्तान्त सुना तो वे बड़े उत्तेजित हुए। यवनों के अत्याचार ने उन के क्रोध को द्विगुणित कर दिया। क्रोधावेश मे मुख से निकले हुए शिवाजी के वीर शब्दों ने मावलियों के हृदयों को अत्यन्त उत्तेजित कर दिया। वे सब प्रकार से अफजलखां का मुख-मर्दन करने के लिये उद्यत हो गये। सुहृद मित्रों से परामर्श कर शिवाजी अपनी इष्ट देवी भवानी के मन्दिर में गये। जाते समय चितनीस से कह दिया कि उस समय जो शब्द मेरे मुख से निकलें उन सब को तुम लिख लेना। ध्यानमग्न शिवाजी के मुख से निकले हुए शब्द अति ही उत्तेजक थे। प्रार्थना समाप्त कर शिवाजी अपनी माता जीजीबाई के पास गये और उन से समस्त व्यवस्था वर्णन की। पीछे रण-क्षेत्र में जाने के लिये आशीर्वाद मांगा। वात्सल्य-प्रेम-पूरित माता जीजीबाई ने आशीर्वाद दे कर शिवाजी को विदा किया।

बीजापुर की सेना बढ़ती चली आ रही थी। अफ़-

ज़ल ख़ां सोचते चले आते थे कि पहुँचते ही शिवाजी को पराजित कर बन्दी कर लूंगा पर जब शिवाजी के कर्म्मों की ओर ध्यान जाता था तब उस के हृदय में चंचलता होती थी। वह सोचता था कि कहीं मुझे भी मुंह में कालिख लगा कर दरबार में लज्जा न उठानी पड़े। पुनः कभी यह भी विचारते थे कि यदि समर में शिवाजी पर विजय मिल भी गई तो क्या, शिवाजी का हाथ आना ज़रा कठिन काम है अतएव मुझे इस समय बुद्धिमानी से काम करना चाहिए। सोच समझ कर अफ़ज़ल ख़ां ने गोपीनाथ पन्त को अपना दूत बना कर शिवाजी के पास भेजा §। यह ब्राह्मणकुमार अपने समय का एक

---

§ किसी किसी ने ऐसा भी लिखा है कि पन्त जी के आने के पूर्व ही शिवाजी ने अफ़ज़लख़ां के पास कहला भेजा था—" मेरी क्या ताब है कि आप ऐसे वीरपुरुष से युद्ध ठानूं या युद्ध करने का साहस करूं। इसलिये आप से यह मेरी प्रार्थना कि है आप मेरे किये कार्य्यों को भूल जावे तो आज तक मैं ने आप के जितने क़िलों पर दख़ल किया है वे सब छोड़ दूं" परन्तु जो बातें पन्त जी ने शिवाजी से की थीं उन से इस बात का पता नहीं चलता है।

विद्वान् पुरुष था। बीजापुर के दरबार में इन का मान भी था। शिवाजी पर चढ़ाई करते समय अफ़ज़ल ख़ां ने इन को अपने साथ ले लिया था। उसने इनसे विभीषण का काम लेना विचारा था।

पन्त जी दूत बन कर शिवाजी के पास जा पहुँचे और अफ़ज़ल ख़ां के प्रेषित-सन्देश को कह सुनाया। उन्होंने शिवा जी से कहा कि बीजापुर-सरदार आप से युद्ध करना नहीं चाहते हैं, वे आपके पिता शाहजी के परम-मित्र हैं अतएव वे चाहते हैं कि आप भी उनसे वैर-भाव छोड़ कर प्रेम-भाव स्थापित करें क्योंकि पितृ-मित्र के साथ ऐसा करना सर्वथा प्रशंसनीय होगा और बीजापुर से आपका पूर्ववत् प्रेम-सूत्र बंध जायगा। अफ़ज़ल ख़ां चाहते हैं कि कोकण प्रदेश के आप ही जागीरदार रहें। पन्त जी के इस प्रस्ताव को शिवाजी ने बहुत ही पसन्द किया। शिवाजी ने सोचा कि यदि इसी तरह से यह झगड़ा शान्त होजाय तो अच्छी बात है। शिवाजी का यह ख़्याल था कि यदि दैव-वशात् इस युद्ध में मुझे विजय-लक्ष्मी प्राप्त भी हो गई तो क्या, बीजापुर अन्त को प्रभुत्व-शाली राज्य है। उस के सम्मुख हमारा टिकना असम्भव है। सन्धि हो जाने पर मुझे कोकण मिल ही जायगा उसीमें मैं अपनी

वृद्धि करूंगा और पश्चात् मैं बीजापुर का सामना कर सकूंगा। यह सब सोच विचार कर शिवाजी ने सन्धि-प्रस्ताव को स्वीकार करने में अपनी अनुमति दे दी।

जब शिवाजी ने सन्धि-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तब पन्त जी ने उनसे कहा कि अब आप को उचित है कि आप एक बार अपने पिता के मित्र के साथ साक्षात्कार करें। आप दोनों के मिलने से एक प्रबल-प्रेम-पाश तैयार हो जायगा। अब तो शिवाजी को कुछ सन्देह हुआ। प्राचीन सम्राट् अलाउद्दीन के कर्म उनकी आंखों के सामने घूमने लगे *। मिलने का तात्पर्य क्या ? सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए नहीं और दोनों जने मिल लें, इस का प्रयोजन क्या ? अवश्यमेव इसमें कुछ भेद है। उन के हृदय में सन्देह उठने लगे। उन को ख्याल आया कि कर्नाटक के युद्ध में इसी अफजल खां के षड्-यन्त्र से मेरे भाई का जीवनान्त हुआ था। ऐसे ही

* अलाउद्दीन ने जब मेवाड़ पर चढ़ाई की थी तो वहां, राणा भीम सिंह उस के शिविर में गए। पहिले तो उस ने अपने अपराध की क्षमा मांगी और फिर बात करते २ उनको अपनी सेना के मध्य में ले आया। यहां पर यवनसैनिकों ने अलाउद्दीन के संकेत से राणा को बन्दी कर लिया। .मेवाड़ का इतिहास।

नारकीय जनों के कारण मेरे पिता को काल कोठरी में प्राणान्तक-पीड़ा सहन करनी पड़ी थी। इन यवनों ने एक बार ही नहीं किन्तु सहस्त्रों बार सरलस्वभाव हिन्दुओं को अपने कपट-पाश में फांसा है क्या ये विश्वासनीय हो सकते हैं? इन्हीं विचारों के कारण उस रोज़ की सभा विसर्जित हुई।

सभा-भङ्ग होते समय शिवाजी ने पन्त जी से कहा कि अभी आप ठहरिए। उन्होंने उन की बात मान ली। शिवाजी उन के लिए उचित प्रबन्ध कर अपने अन्तःपुर में चले गये। जब कुछ रात्रि व्यतीत हो गई तो शिवाजी चुपचाप पन्तजी के पास पहुंचे। इस समय जो शिवा जी ने उन से बात चीत की है वह अतीव हृदयाग्रहिणी है। शिवाजी ने पन्तजी से कहा "यद्यपि आप बीजापुर के कर्मचारी हैं, पर आप अति उच्च ब्राह्मण-कुलोद्भव हैं। हम क्षत्रियगण जिन ब्राह्मणों के दास हैं, आप वही ब्राह्मण हो कर हमारी हानि सह नहीं सकते हैं। फिर आप देखते ही हैं कि इन मुसलमानों द्वारा हिन्दुस्थान का सर्वनाश हो रहा है। सनातन हिन्दू धर्म्म की इन के द्वारा अनन्त दुर्गति हो रही है, देव द्विजों की निर्मल मर्य्यादा टूट रही है। मैंने इनसे मातृभूमि के उद्धार का बीड़ा उठाया

है । इन के षडयन्त्र से मेरा नष्ट होना कदापि आप को इष्ट नहीं हो सकता है। आप धर्म्म की रक्षा के लिये सन्तान रूपी क्षत्रियों को इन से नष्ट न होने का प्रबन्ध कीजिये। आपने अफ़ज़लखां से मेरा सम्मिलन होना चाहा है, पर ऐसा प्रबन्ध कीजिये, कि मिलने के समय अफजल खां मुझे जाल में न फँसा सके। यद्यपि मैं लड़ने को सदा प्रस्तुत हूं, पर अफजल खां के मिलने की इच्छा पूरी न करने का कायरपन भी मुझे असह्य है सो आप ऐसे स्थान पर भेंट कराइये कि यदि धोखेबाजी से मुझे काबू में कर लेना उस को अभीष्ट हो तो वह वैसी इच्छा पूर्ण न कर सके। पन्त जी ने जब शिवाजी की इस ओजस्विनी वाणी को सुना तो उन का हृदय चलायमान हो गया। उन का हृदय एक बार ही बीजापुर दरबार ही से नहीं किन्तु मुसलमानों की ओर से भी फिर गया। शिवाजी से अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट कर उन को सहायता देने का वचन दिया। पन्त जी को अपना कर शिवाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन को ऐसा भासित होने लगा कि उन्हों ने इसी समय अर्द्ध-विजय प्राप्त करली। पन्त जी के लौट जाने के उपरान्त शिवाजी ने कृष्णाजी भास्कर को अपना दूत बना कर अफ़ज़ल ख़ां के पास भेजा। उन्हों ने वहां पहुंच

कर अफ़ज़लख़ां से बात चीत की। सन्धि सम्बन्धी बात चीत हो जाने के पश्चात् मिलने की बात ठहरी, मिलने का स्थान प्रतापगढ़ के नीचे निर्दिष्ट हुआ।

मिलने की बात पक्की हो जाने के पश्चात् शिवाजी ने अफ़ज़लख़ां की सेना का निरीक्षण करना प्रारम्भ किया। शिवा जी ने देखा कि उस के पास इस समय इतनी सेना है कि समर-क्षेत्र में मेरा विजय पाना कठिन है पर उन्होंने यह भी देखा कि अफ़ज़लख़ां की सेना वाई से महाबलेश्वर तक फैली हुई है अतएव उस के उभय पार्श्व भाग आक्रमण के लिये अरक्षित हैं। शिवाजी की सेना कृष्णा एवं क्षायना की वादियों के निकटस्थ जङ्गलों में इस प्रकार से छिपी हुई फैली थी कि अरि-सेनानी की दृष्टि उस पर नहीं पड़ सकती थी। अफ़ज़लख़ां तो इस विचार में थे कि मैंने सर्वतः शिवाजी की सेना को अवरुद्ध कर लिया है पर शिवाजी अपने को सुरक्षित समझते थे।

उभय-पक्ष-नेता इस बात के उद्योग में संलग्न थे कि यदि किसी प्रकार से एक बन्दी हो जाय तो विजय-लक्ष्मी बन्दी करने वाले को गाढ़ आलिङ्गन करेगी। दोनों ही इस बात से पूर्ण रूप से परिचत थे कि पूर्वीय युद्धों

में सेनापति के पतन होने पर बहुधा उस की पराजय होती है। शिवाजी ने मोरोपन्त तथा नेताजी पालकर को बुलाया और समस्त व्यौरा कह सुनाया। उन्हों ने विशेष सावधानी रखने की सलाह दी। सलाह हो जाने के पश्चात् शिवाजी ने अपनी सेना को मुसलमानी सेना के आस पास छिपा दिया और उसे सर्वदा सचेत रहने का आदेश दिया। कुछ थोड़ी सी और सेना ले कर मोरोपन्त अपनी अवशिष्ट सेना से आगे बढ़ गया और अफ़ज़ल ख़ां की सेना के निकट आ गये। एक वार पुनः माता से आशीर्वाद ले कर शिवाजी चले। चलते समय माता ने कहा "शिवा! देखो! ये मुसलमान बड़े ही विश्वासघाती हैं। इन से सदा ही सचेत रहो और देख तू अफ़ज़ल ख़ां से मिलने जाता है मैंने सुना है कि वह एक भीमकाय योद्धा है और तू उस के सामने बहुत ही नाटा है अतएव इस बात का ध्यान रखना कि कहीं ऐसा न हो कि वह तुझको दबा ले।" शिवाजी ने कहा "माता! मैं सब प्रकार से सावधान हूं। आप कुछ चिन्ता न करें, भवानी की कृपा से सब मङ्गल होगा।" शिवाजी वहां से चल पड़े और आ कर उन्हों ने जिरह-बख्तर पहिन कर ऊपर से एक सादा वस्त्र धारण

किया। फिर बाघनख * को छिपा कर अफ़ज़लखां से मिलने को चले।

चलते समय शिवाजी ने अपने साथ शम्भाजी कावजी और जिउमहला को अपने साथ ले लिया था§। अफ़ज़लखां ने शिवाजी को दूर से आते हुए देख अपने पास खड़े हुए एक योद्धा से पूछा 'इन में शिवाजी कौन है?'। उस ने उत्तर में कहा, 'देखिये वह जो नाटे क़द तथा सांवले रङ्ग का व्यक्ति तलवार लगाये चला आता है वही शिवाजी हैं'। ऐसे नाटे मनुष्य को देख कर अफ़ज़लखां मन ही मन प्रसन्न हुए। शिवाजी अकेले अफ़ज़लखां के तम्बू में आए। उन्हें आया देख अफ़ज़लखां उन से आगे मिलने को बढ़ा। थोड़ी देर बाद बाहर लोगों को 'दौड़ो

---

* कोई २ इसे बघनखा भी कहते हैं। यह एक प्रकार का शस्त्र है जो व्याघ्र के पञ्जे के सदृश होता है। यह दस्ताने में लगा रहता है। जिस प्रकार व्याघ्र अपनी इच्छा से पञ्जे के नखों को बाहर निकाल लेता है और फिर भीतर कर लेता है उसी प्रकार यह भी काम में लाया जा सकता है।

§ सन्धि प्रस्ताव में यह भी तय हुआ था कि सम्मेलन-समय उभयपक्ष वाले दो दो योद्धा अपने २ साथ ला सकते हैं।

दौड़ो, मरे, मरे' इत्यादि का शब्द सुनाई दिया। उभय पक्ष के चारों योद्धा भीतर गये। उन्हों ने जो दृश्य देखा वह अति भयानक था। अफ़ज़लख़ां का शव पृथ्वी पर पड़ा हुआ छटपटा रहा था। उन की अन्तड़ियां पेट से बाहर निकल पड़ीं थीं। इस दृश्य को देख कर सैयद बांडे तथा गोविन्द पन्त* का रक्त उबल उठा। उधर शिवाजी के साथी भी वहां आगये थे। सैयद ने शिवाजी पर आक्रमण किया पर थोड़ी ही देर में उस का मस्तक धड़ से अलग हो कर भूमि पर लोटने लगा। गोविन्द पन्त ने असि निकाल कर आक्रमण किया पर शिवाजी ने कहा 'तुम ब्राह्मण हो अतएव अवध्य हो, यदि तुम्हें अपने प्राण प्यारे हों तो यहां से हट जाओ।' इतने में जिवमहला ने उसका खड्ग छीन लिया और उस को निरस्त्र कर दिया। पीछे वह छोड़ दिया गया। अफ़ज़ल ख़ां का सिर काट लिया गया।

यह घटना क्वार शुक्ला ७ शुक्रवार सन् १६५९ को हुई थी।

इतिहास में यह घटना विवादपूर्ण है। ग्रांट डफ्, स्मिथ् तथा लेनपूल इत्यादिक इतिहासवेत्ताओं ने शिवाजी को इस घटना के कारण 'दगाबाज़' ठहराया

* ये दोनों योद्धा अफ़ज़लख़ां की ओर के थे।

है। उन्होंने शिवाजी के इस कर्म को 'दगाबाजी' बतलाया है। यवन इतिहासकारों ने तो शिवाजी को बहुत कुछ खरी खोटी सुना डालीं परन्तु सभासद तथा चिटनिस ने अफ़ज़ल ख़ां को दोषी ठहराया है। इतिहास के लिए यह विषय विचारणीय है। यूरोपियन तथा मुसलमानों ने तो इस घटना का यों वर्णन किया है 'शिवाजी अफ़ज़ल ख़ां से मिलने गये। अफ़ज़ल ख़ां उन से मिले, छाती से लगाते समय शिवाजी ने वाघनख को जिसको वे अपने साथ गुप्त रूप से लाये थे ख़ां के उदर में घुसेड़ दिया। ख़ां की अंतड़ियां निकल पड़ीं, वे छटपटा कर भूमि पर गिर पड़े। पश्चात् उन का सिर काट लिया गया। महाराष्ट्र इतिहासकार यह लिखते हैं कि ख़ां शिवाजी से शारीरिक बल में कुछ न्यून न थे। छाती से लगाते समय उन्होंने शिवाजी की गरदन पकड़ ली और उन को अपनी ओर खींचा। जब शिवाजी ने देखा कि ख़ां की ओर ही निगाह है तब उन्होंने सांघातिक वाघनख से काम लिया। कोई २ तो यहां तक कहते हैं कि जब ख़ां ने उन के ऊपर तलवार का वार किया तब शिवाजी ने वाघनख से ख़ां का पेट फाड़ डाला। इस प्रकार से इस विषय पर दो भिन्न ऐतिहासिक मत हैं। एक तो शिवाजी को दोषी ठहराता है और दूसरा अफ़ज़ल ख़ां को।

अफ़ज़ल ख़ां मारे गये और शिवाजी ने उनको मारा इस में तो किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है। अब रह गई प्रथम आक्रमण की बात सो घटनाओं पर निर्भर है। तत्कालीन घटनाओं पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यह 'दग़ाबाज़ी' असामान्य नहीं थी। उस समय इस से भी घोरतम 'दगाबाजियां' कदाचित् पाप-कर्म नहीं समझी जाती थीं। औरङ्गजेब जो मुसलमानों के मध्य में एक धार्मिक मुसलमान बादशाह गिना जाता है। जिस ने धर्म्म को सर्वश्रेष्ठ मान कर 'फ़क़ीरी' लेली थी, जो क़ुरान आदि को लिख कर अपना समय व्यतीत करता था उसी औरङ्गजेब ने अपने सहोदर भाई मुराद-बख़्श के साथ कैसा पाशविक बर्त्ताव किया था। अला-उद्दीन ने अपने चचा का 'दगाबाजी' ही से वध किया था। अकबर ने 'दगाबाज़ी' से ही वीर जयमल को गोली का निशाना बनाया था। मुहम्मदग़ोरी ने 'दगा-बाजी' ही से थानेश्वर में विजय पाई थी। इतने पर भी मुसलमान इतिहासकार शिवाजी को 'दगाबाज' और उन के इस कर्म्म को 'दगाबाजी' कहें तो बड़ा आश्चर्य्य है।

अब थोड़ी देर के लिए हम यह मानलें कि शिवाजी ने ही पहिले अस्त्राघात किया तो उन्होंने क्या दोष किया? क्या उन को यह नहीं मालूम था कि इन्हीं अफ़ज़ल ख़ां ने

उन के सहोदर भ्राता शम्भाजी का वध कराया था ? कौन ऐसा मनुष्य है जो अपने भाई के मारनेवाले को देख कर क्रोधानल से न जलने लगे। क्या उन को यह विस्मृत होगया था कि इन्हीं ख़ां साहब ने तुलजापुर और पन्धरपुर के देवालयों को नष्ट किया था ? क्या उनको यह याद नहीं आता था कि इसी हबशीने हमारी पूजनीय देव-मूर्त्तियों पर ग़ज़नवी बर्त्ताव किया था ? क्या वे नहीं जानते थे कि ऐसे ही सरदारों के कारण हमारे पूजनीय पिता 'ज़िन्दा दरगोर' कर दिये जाने वाले थे। इतिहासज्ञ इस विषय को न विचारते हुए एकदम शिवा जी को दोषी बतलाने लगे।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उस घटना स्थल पर केवल दो ही आदमी थे; शिवाजी और अफ़-ज़ल ख़ां। जब अफ़ज़ल ख़ां मारे गये तो शिवाजी दोषी ठहरा दिये गये। अब थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाय कि शिवाजी ही मारे गये होते तब इति-हास में क्या लिखा जाता ? कदाचित् तब भी इतिहास शिवाजी को ही दोषी ठहराता क्योंकि वह तो 'लुटेरे' थे अतएव लुटेरे को मार डालना कुछ दोष की बात नहीं है। अफ़ज़ल ख़ां न्याय के पक्ष पर थे उन को कौन दोषी ठहरा सकता था ? अस्तु, समस्त घटनाओं पर विचार

न कर विदेशियों ने शिवाजी को धींगाधींगी से दोषी कह डाला। अब हम को तत्कालीन घटनाओं पर विचार करना है।

शिवाजी ने गत बारह वर्षों में जो कुछ मुसलमानों के पञ्जे से छुटा पाया था उसका अधिकार में रहना इसी युद्ध पर निर्भर था। शिवाजी यदि हारते तो वह क्या रह जाते? नितान्त एक सामान्य मनुष्य, नहीं नहीं कदाचित् उन को अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ता। अब एक ओर जीवन-रक्षा, मातृभूमि-रक्षा, सहोदर भ्राता का वध-प्रतिशोध, मन्दिर एवं मूर्त्तियों का भग्न होने का क्षोभ और दूसरी ओर इतिहास की 'दग़ाबाजी' क्या बतला सकती है? इस का विचार हम विदेशियों के ऊपर छोड़ते हैं। अब रह गये महाराष्ट्र इतिहास लेखक, हम उन के ऊपर विश्वास कर सकते हैं क्योंकि जिस समय अफ़ज़ल ख़ां बीजापुर से चले थे उस समय उन्हों ने जो प्रतिज्ञा की थी और रास्ते में जो जो अत्याचार किये थे उनके कारण ख़ां के लिये शिवाजी पर प्रथम प्रहार करना कुछ अनहोनी घटना नहीं कही जा सकती है। अतएव किसी प्रकार से भी शिवाजी का यह कर्म अनुचित नहीं कहा जा सकता है। यदि ख़ां ने पहिले प्रहार किया और शिवाजी ने आत्मरक्षा में ख़ां को मारा तो

इस में उनको कोई कदापि दोषी नहीं ठहरा सकता है और यदि शिवाजी ने ही उन पर प्रथम प्रहार किया तो भी वे दोषी नहीं क्योंकि उन के पास ऐसा करने के लिये बहुत से कारण थे जो ऊपर दिखला दिये गये हैं।

अफ़ज़ल ख़ां के मरणोपरान्त शिवाजी ने अपनी छिपी हुई सेना बुलाई। घोर युद्ध उपस्थित हुआ। प्रसिद्ध कवि भूषण ने कहा है:—

उतै बादशाह जूके गजन के ठट्ठ छूटे
उमड़ि घुमरि मतवारे घन भारे हैं।
इतै शिवाजू के छूटे सिंह राजकुम्भ
करिन विदारि फारि चिक्करत कारे हैं॥

थोड़ी देर तक दोनों दलों में भयानक युद्ध हुआ पर सेनापतिहीन बीजापुर-सेना मावलियों के सामने न टिक सकी। उस के पैर उखड़ गये। उस समय शिवाजी ने कहा 'भागती हुई सेना पर अस्त्र न चलाये जांय' पर यह ख़बर मोरोपन्त के पास देर में पहुंची। वे उस समय यवन-सेना में प्रलय कर रहे थे। उन से यवन आक्रमित सेना का कुछ ही अंश कटने से बचा। नेताजी के पास भी ख़बर देर में पहुंची, वे वहां भी सब सफ़ाई कर चुके थे परन्तु जिन्हों ने आत्मसमर्पण किया शिवाजी ने उन के साथ बहुत अच्छा बर्त्ताव किया जिस से

अनेक मुसलमान उन की सेना में भर्त्ती हो गये। सेना के भाग जाने के पश्चात् शिवाजी ने आदर पूर्वक अफ़-ज़ल ख़ां के शव की अन्तिम क्रिया करवा दी। विजय के पश्चात् शिवाजी ने अपने वीर सैनिकों को बहुत कुछ पुरस्कार दिया था। खन्दुजी काकरे ने ख़ां के खान्दान को बन्दी कर लिया था पर घूस ले कर उसे छोड़ दिया था। शिवाजी को इस बात का पता लग गया अतएव घूस लेने के कारण उस को दण्ड दिया गया।

शिवाजी को इस युद्ध में ६५ हाथी, ४००० अश्व, १२०० ऊंट, २०० गठरी वस्त्र, ७ लक्ष के मूल्य का सुवर्णादि और तोप आदि प्राप्त हुई थीं।
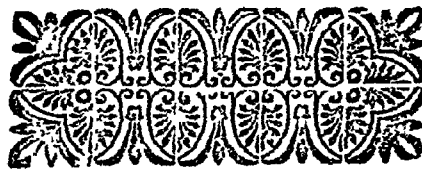
ग्यारहवां परिच्छेद ।

पितृ-वैर-प्रतिशोध ।

इस विजय ने शिवाजी को बहुत कुछ दिया। युद्ध के सामान के सिवाय उन को पन्हाल से दक्षिणस्थ प्रदेश तथा कृष्णा की तटस्थ भूमि अधिकार में आ गई।

अब यवनाधिपतियों को मालूम होने लगा कि इतने दिनों के पश्चात् पददलित सर्वत्रलाञ्छित निरुत्साहित हिन्दू जाति में विषम वीर्य्य-वन्हि उत्पन्न हुई है। पाठक फतहखां सीदी को भूल नहीं गये होंगे। एक वार महाराष्ट्र सेनापति की मूर्खता से विजय पाकर वह शिवाजी को तुच्छ समझने लगा था। वह समझता था कि शिवाजी मेरे सामने कुछ भी नहीं हैं। जब चाहूं तभी उनको मार कर भगा सकता हूं पर जब उसने शिवाजी की इस विजय को देखा तो वह भी एक वार सन्नाटे में आ गया पर न मालूम क्या समझ कर उसने शिवाजी पर इसी समय आक्रमण करना विचारा। जब पहिली वार शिवाजी की सेना का उस से युद्ध हुआ था तो उसने ताला तथा गोसाला नामक शिवाजी के दो दुर्गों को लूट लिया था। अब इस समय उन्हीं दोनों दुर्गों को अपने अधिकार में लाने का विचार कर उन

पर आक्रमण किया। आक्रमण हुआ पर इस बार उस के दैव सीधे न थे। शिवा जी की सेना ने उस के धुर्रे उड़ा दिये। विजयोन्मत्त महाराष्ट्रीय सैन्य उस के पीछे पड़ी और अन्त में यहां तक उस का पीछा हुआ कि उस को उस प्रान्त से अपनी सेना उठा कर मुंह काला करना पड़ा।

फतह खां को भगा कर यह सेना पन्हाल पर चढ़ दौड़ी। इसमें शिवाजी ने अपने कौशल का परिचय दिया था। शिवा जी ने अपने नायकों में बनावटी झगड़ा फैला दिया। एक सेना-नायक ८०० सिपाहियों का एक दल ले कर पन्हाल के दुर्गाध्यक्ष से जा मिला और कहा कि शिवाजी के अनुचित व्यवहार से क्षुभित होकर मैं आप के यहां नौकरी करना चाहता हूं। सेना-नायक ने उस समय ऐसा भाव दिखलाया कि दुर्गाध्यक्ष को उस का सर्वथा विश्वास हो गया। उसने उस को अपने यहां नौकर रख लिया। थोड़े दिनों के पश्चात् शिवाजी ने उस पर एकाएक आक्रमण किया *। उनकी पूर्व सेना वहां मौजूद ही थी उसने गढ़ का द्वार खोल दिया। नवागत सेना दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हुई और थोड़ी देर की मार काट के पश्चात् दुर्ग शिवा जी के अधिकार में आ गया।

---

* इस सेना के सेनापति अन्नाजी थे।

अब शिवाजी का आतंक दूर २ तक फैल गया था। इधर उधर के वीरगण शिवाजी की सेना में सम्मिलित होने लगे। शिवाजी के सवार बीजापुर तक धावा मारने लगे। इन्ही थोड़े से दिनों में पवनगढ़ तथा वसन्तगढ़ शिवाजी के अधिकार में आ गये। राङ्गना तथा केलनेह * के विजय करने में शिवाजी को नाममात्र का युद्ध करना पड़ा था। शिवाजी की दृष्टि कोल्हापुर के दुर्ग पर पड़ी। सन् १५५९ के दिसम्बर मासमें शिवाजीने उस पर अधिकार कर लिया। बीजापुर ने रुस्तम जुमान को कोल्हापुर पर पुनरधिकार के लिये प्रेषित किया पर महाराष्ट्रीय सेना ने उसे मार भगाया। रुस्तम को पराजित करने के पश्चात् शिवाजी बीजापुर की ओर बढ़े पर उस के पास तक पहुंच कर लौट पड़े।

उपर्युक्त समस्त स्थान अक्तूबर से दिसम्बर तक शिवाजी के अधिकार में आये थे।

बीजापुर के सुल्तान को अब दिन रात चैन नहीं था। शिवा जी की ओर से उन्हें बड़ा भय उत्पन्न हो गया था। 'बीजापुर वीरन के उर दाड़िम से दरक रहे' थे,

---

* शिवाजी ने इस दुर्ग का नाम 'विशालगढ़, रक्खा था। उसी नाम से वह अभी तक प्रसिद्ध है।

बीजापुर में प्रतिदिन शिवाजी के दमन करने की मन्त्रणाएँ की जाने लगीं। विचार होने के पश्चात् यह ठहरा कि शिवा जी पर एकदम कई ओर से आक्रमण किया जाय। इस की पूर्ति के लिये कतिपय यवन सरदार चुने गये। इनमें से एक तो सीदी जौहर नाम का हबशी था। वीरता के कारण उस समय उस का अच्छा नाम था। बीजापुर राज्यान्तर्गत 'करनूल' प्रदेशस्थ सेना का सेनापति था। जिस समय सीदी शिवाजी पर चढ़ने को चला तो उसने अपना नाम सीदी से सलावत ख़ां रख लिया। अफ़ज़ल ख़ां का पुत्र फ़ाज़िल ख़ां भी आक्रमणकारी हुआ। आक्रमण करने के पूर्व बीजापुर सुलतान ने शिवाजी के पास कहला भेजा कि अब भी तुम मेरी अधीनता स्वीकार कर लो। आगत दूत से शिवाजी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, 'दूत! जाओ और सुलतान से कह दो कि उनको अब मेरे ऊपर आज्ञा करने का अधिकार नहीं है।" इस रूखे तथा अभिमान पूर्णोत्तर को ले कर दूत बीजापुर पहुंचा। इस उत्तर को सुन कर सुलतान की क्रोधाग्नि द्विगुणित हो गई।

दूत को विदा कर शिवाजी युद्ध की तैयारी करने लगे। आक्रमणकारियों की आक्रमण-परिपाटी से परिचित होकर उन्होंने उचित प्रबन्ध कर डाला। फ़तहख़ां

सीदी * का दर्पदलन करने के लिये रघुनाथपन्त निर्वाचित किये गये। आवाजी स्वर्णदेव तथा कल्याण भीमगीकर दुर्गों और प्रदेशों की रक्षा के लिये नियुक्त किये गये। मोरो पन्त के सुपुर्द पुरन्धर, सिंहगढ़, तथा प्रतापगढ़ के दुर्ग किये गये। स्वयं शिवाजी पन्हालगढ़ में जा डटे। बाहरी तौर से उन्हों ने कुछ लड़ाई के लक्षण न दिखलाये। उनकी सारी सेना दुर्गों तथा वनों में छिपी हुई थी। आक्रमणकारी सेना को उस समय बड़ा सन्देह हुआ, (जब उन्होंने कोई लड़ाई के चिन्ह न देखे) उन्होंने इस बात का पता लगाना शुरू किया कि शिवा जी इस समय कहां हैं। शीघ्र ही पता चल गया कि वे पन्हाल दुर्ग में हैं अतएव यवन सेना उसी ओर चढ़ दौड़ी। शिवा जी को उस दुर्ग की दृढ़ता का परम विश्वास था पर उन का विश्वास ठीक न निकला। दुर्ग अदृढ़ एवं भेद्य था। शिवा जी एकदम विपत्ति में फँस गये। आक्रमणकारी सेना ने दुर्ग को घेर कर उसका पतन करना विचारा। अल्प सेना से मैदान में युद्ध करना अनुचित समझ शिवा जी ने एक युक्ति विचारी। दुर्गस्थ सेना को उन्होंने दो भागों में विभाजित कर डाला। एक के नायक तो स्वयं बने और दूसरे के बाजीप्रभु को बनाया।

---

* अतिक्रम करने वाली सैन्य में यह भी सम्मिलित होगया था।

वाजीप्रभु ने शिवाजी से कहा कि आप अपनी सेना को ले कर आगे बढ़िए मैं इस मुसलमानी सेना को रोकूंगा । इस उत्तर को सुन कर शिवा जी ने कहा 'वाजीप्रभु' में तुम को इस प्रकार से कटा देना नहीं चाहता हूं, तुम यदि यहां मारे गये तो मेरी सेना को बड़ी हानि पहुंचेगी ।' वाजी ने कहा, 'आप इस विचार को छोड़िए क्योंकि आज "उद्देश्य रूपी यज्ञ में हमारे अनेक साथी बलिदान होंगे ।" शिवाजी न पुनः आपत्ति की और कहा कि हमारे रहते हुए तुम नहीं मर सकते हो इतना कहकर उन्होंने उपस्थित सैनिकों की ओर देख कर कहा "आओ हमलोग वीरत्व का परिचय देवें । ऐसा समय वीरों को वारम्वार नहीं प्राप्त होता है।' वाजीप्रभु से न रहागया उन्हों ने शिवाजी को बीच ही में टोक कर कहा 'प्रभो ! मेरी आप चिन्ता न कीजिये । आप के पास अनेकानेक वाजी प्रभु हैं । मैं यहां यदि मारा भी गया तो क्या चिन्ता, मुझ से अनेक वाजी प्रभु आप को मिल जायंगे पर शिवाजी फिर नहीं मिल सकते हैं । देखिये समस्त हिन्दू जाति आप के मुख की ओर निहार रही है । आप के शरीर को यदि कुछ हो गया तो भारत अन्धकार के अन्धकार ही में रह जायगा इसलिये अब आप ससैन्य यहां से जाइये ।" शिवाजी ने कहा 'वाजीप्रभु ! यह हम से नहीं

हो सकता है' बात काट कर फिर बाजी प्रभु ने कहा 'जाइये, आप को शिवाई की शपथ है, जाइये, महाराष्ट्र अनाथ न हों।" यों ही थोड़े विवाद के पश्चात् शिवाजी को उन की बात माननी पड़ी। आंसू बहाते हुए शिवाजी वहां से चल पड़े।

निशा की निस्तब्धता भङ्ग हुई। यवन सैन्य से 'शिकार भागा, पकड़ो न छोड़ो' का शब्द सुनाई देने लगा। शिवाजी एक ओर से चुपके २ चले जाते थे। बाजीप्रभु ने यवन-सैन्य को रोका। घसीपुली का युद्ध प्रारम्भ हुआ। वीर मरहटे मुसलमानों की गति को रोकने लगे। स्वामि-भक्त बाजीप्रभु भी अटल साहस से उन का सामना करने लगे। व्रणाधिक्य से उन का सारा शरीर क्षत विक्षत हो गया पर वे अपने स्थान से तिल भर भी न हटे। शिवाजी रांगना के दुर्ग में पहुंच गये और वहां पहुंच कर उन्हों ने पांच तोपों का शब्द किया *। बाजीप्रभु ने जिस समय उस शब्द को सुना उन की इच्छा पूर्ण हो गई। शिवाजी सकुशल रांगना में पहुंच गये। यह जान कर उन के मुख पर प्रसन्नता छा गई पर घावों के कारण

* चलते समय बाजीप्रभु ने कह दिया था कि जब आप रांगना पहुंच जावें तब क्षेम सूचक पांच तोपों का शब्द करवा दीजियेगा।

उनका रक्त बहुत निकल गया था अतएव वे शिथिल-प्राय होगये थे। थोड़ी देर में उनका शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा और एक स्वामि-भक्त नर-रत्न की आत्मा स्वर्ग को सिधार गई। धन्य महाराष्ट्र लियोनिडास! ऐसी मृत्यु सर्वथा दुर्लभ होती है।

बाजीप्रभु के मरणपर्य्यन्त यवन-सेना पन्हाल दुर्ग में घुसी। वीर मावलियों ने पद २ पर घोर युद्ध किया पर मुट्ठी भर सेना उस को कब तक रोक सकती थी। प्रायः समस्त वीर मावलियों ने वीर गति प्राप्त की पर यवनों की इच्छा पूर्ण न हुई। पिंजड़े में से शेर निकल गया। अब खाली उन को पिंजड़ा खटकाना था। यह घटना सन् १६६० में हुई थी।

सन् १६६१में स्वयं बीजापुर के सुल्तान शिवाजी पर चढ़ आये। शिवाजी ने देखा कि अब बड़ी कठिनता हुई। सरदारों के सरदार से उन की मुठभेड़ थी। उन्होंने एक सुयुक्ति सोची। सुल्तान की सेना बड़ी थी। आडम्बरों का इतना बाहुल्य था कि वह सेना एक स्थान से दूसरे स्थान तक बहुत देर में पहुंचती थी। शिवाजी ने विचारा कि यदि यह सेना निरन्तर युद्ध में संलग्न रक्खी जावे तो थोड़े ही दिनों में वह अशक्त हो जायगी। शिवाजी की सेना की गति बहुत ही तेज

थी। यदि आज वे यहां हैं तो दूसरे दिन २५, ३० मील की दूरी पर दिखलाई देते थे *। अपने थोड़े से सवारों को ले कर शिवाजी ने बीजापुर की सेना के दांये बांये भाग पर आक्रमण करना आरम्भ किया। कभी मध्य में आक्रमण किया, कभी पृष्ठ भाग पर चढ़ गये, इस प्रकार से बीजापुर सैन्य में हलचल मचा दी। किसी को यह नहीं मालूम होता था कि कब आक्रमण होगा। रसद तथा युद्धोपयोगी पदार्थों को शिवा जी वहां तक पहुंचने ही न देते थे। थोड़े ही दिनों में बीजापुर की सेना शिथिल होगई। इस युद्ध में शिवाजी की बहुतसी जागीर तथा दुर्ग बीजापुर के अधिकार में चले गये थे पर शिवाजी की युद्ध परिपाटी ने सुल्तान को हैरान कर डाला।

इसी युद्धकाल में शिवाजी को पिता की आज्ञा का स्मरण आया। उपयुक्त समय समझ कर शिवाजी बाजी घोरपड़े पर चढ़ गये। थोड़ा बहुत युद्ध हुआ और

* फ्रांस के प्रसिद्ध वीर नैपोलियन की भी यही चाल रहती थी। अपनी द्रुतगति के कारण उसने प्रसिद्ध २ युद्धों में विजय पाई थी। मास्को यात्रा में असिद्धि का कारण यही था कि उसने अपनी द्रुतगति को छोड़ कर आडम्बरित होकर गया था।

अन्त में बाजी की पूर्ण पराजय हुई। पितृ-वैर-प्रतिशोध के कारण बाजी को यमपुर सिधारना पड़ा। उस के गृह तथा ग्राम में आग लगा दी गई और अन्त में उस के परिवार तथा ग्राम का चिन्ह मात्र भी मिटा दिया। इस प्रकार से शिवाजी ने पिता के शत्रु से बदला लिया। शाहजी ने जब यह हाल सुना तो उन को अपने पुत्र से मिलने की उत्कण्ठा हुई। बहुत दिनों के पश्चात् शिवाजी अपने पिता शाहजी से मिले। सम्मेलन वास्तव में अपूर्व था। जिस समय शिवाजी ने सुना कि उन के पिता आ रहे हैं तो 'धाये आप उघारे पायन'। कहते हैं कि शिवाजी बारह मील तक नंगे पैर गये थे। जिस समय उन्होंने पिता को देखा उस समयके उनके हृदय के भावों को कौन वर्णन कर सकता है? साष्टाङ्ग प्रणाम ग्रहण कर के शाहजी ने अपने पुत्र-रत्न को छाती से लगाया और आनन्दाश्रु बहाते हुए 'पुत्र! तुम्हारी सदा ही विजय हो कह कर आशीर्वाद दिया।' पिता की जूती उठा कर शिवाजी ने उन को गद्दी पर बिठाया। पुत्र की शीलता से शाहजी बड़े ही प्रसन्न हुए। उन के पास कुछ दिनों तक रह कर शाह जी कर्नाटक चले गये।

अन्त में हार मान कर बीजापुर सम्राट् ने शिवाजी से सन्धि कर ली। उस सन्धि के अनुसार कल्याण से

गोवा तक का कोंकण प्रदेश शिवा जी के अधिकार में आगया। इस समय शिवाजी के पास समस्त कोंकण प्रदेश, (कल्याण से गोवा तक) तथा भीमा से वार्धा तक का घाटमाला प्रदेश था। इस में चाकन से नीरा तक, पुरान्धर से कल्याण तक की जागीर भी सम्मिलित थी। अब शिवाजी के पास पांच हजार पैदल सेना तथा सात हजार सवार थे। इस घटना के साथ ही शिवाजी के जीवन का द्वितीय अङ्क समाप्त हुआ। जो शिवाजी कुछ वर्ष पूर्व कुछ भी नहीं थे जिन के पिता एवं प्रपितामह एक सामान्य जागीरदार थे, उन्हों शिवाजी ने बीजापुर के छक्के थोड़े ही दिनों में छुड़ा दिये।

बारहवां परिच्छेद ।

——:o:——
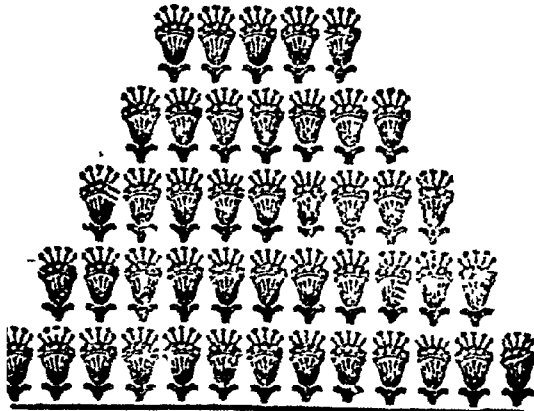
मुग़लों की पराजय ।

अद्यावधि शिवाजी ने मुगल राज्य में हस्ताक्षेप नहीं किया था। सन् १६५७ में शिवाजी ने जूनार को लूट लिया था पर उस समय वह एक सामान्य बात थी और इसके सिवाय उन्होंने दूत भेज कर औरङ्गजेब से सन्धि भी कर ली थी। सम्राट् शाहजहां के समय में जब शिवाजी के पिता बीजापुर के सुलतान द्वारा बन्दी कर लिये गये थे तब उन्होंने सम्राट् से सहायता मांगी थी पर कई कारणों से वह बात भी आगे न बढ़ी। मुगल राज्य से सन्धि रखने में शिवाजी ने जिन कारणों से ढील डाली थी उन कारणों को औरङ्गजेब ने भ्रातृयुद्ध समय दूर कर दिया था पर मनहीमन वह शिवाजी से कुढ़ भी गया था। जब वह सिंहासनासीन हो गया तब उसने सन्धि-शर्त्तों के पूरा करने में गड़बड़ी करनी शुरू की। सन् १६६१ में मुगल सेना ने कल्याण * पर

---

* कल्याण उस समय शिवाजी की अधिकृत की हुई भूमि के प्रान्त उत्तर में था।

अधिकार कर लिया। मुग़लों से युद्ध छिड़ने का यहां से श्रीगणेश हुआ।

औरङ्गजेब ने शायस्ता ख़ां को 'दक्षिण' का सूबेदार बना कर भेज दिया था और गुप्त रीति से उसने ख़ां को महाराष्ट्रों के दमन करने के लिये कह दिया था। सन् १६६१ में जब उपर्युक्त घटना घटित हुई और १६६२ में बीजापुर से शिवाजी ने सन्धि करली तब उन्होंने मुग़लों की ओर मुंह मोड़ा। उन्होंने मुग़ल आक्रमण का कारण जान लिया। वे जान गये कि औरङ्गजेब कितना कपटी है। जब उसके ऊपर कठिन समय पड़ा था तब उसने मुझ से सन्धि करली थी पर जैसे ही वह स्वच्छन्द हुआ कि उसने मेरे ऊपर हाथ साफ़ किया। शिवाजी ने मुग़लों के साथ युद्ध करने की तैयारी कर दी। नेताजी पालकर औरङ्गाबाद की ओर भेज दिये गये। उन्होंने जूनार से उत्तरस्थ दुर्गों को अपने अधिकार में कर लिया। इधर शायस्ता ख़ां ने पूना और चाकन पर मुग़ल पताका फ़हरा दी। मुग़ल सूबेदार ने पूना को मुग़ल सेना का केन्द्र बनाया।

पूना को मुग़लों के हाथों में गया देख शिवाजी को बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने यह भी देखा कि मार-वाड़ केसरी राजा यशवन्त सिंह भी शायस्ता ख़ां की

सहायता के लिये दिल्ली से आ गये हैं। मुग़ल और राजपूत सेना ने पूना के निकट डेरे डाल दिये थे और स्वयं शायस्ता ख़ां उसी दुर्ग में रहने लगा जिस में शिवा जी ने अपनी बाल्यावस्था व्यतीत की थी। शायस्ताख़ां शिवाजी की चतुरता से पूर्णतया परिचित था अतएव उस ने ऐसा सुप्रबन्ध किया था जिस से कोई महाराष्ट्र-देशीय पूना के आस पास न फटकने पावे। शिवाजी इस समय अपने 'सिंहगढ़' दुर्ग में थे। उन के लिये यह नितान्त असम्भव था कि वे खुले मैदान में ऐसी उदधि सम सैन्य की लहरों के थपेड़ों को सहन कर सकें अत-एव उन को चातुर्य्य का अवलम्ब आवश्यकीय जान पड़ा क्योंकि इस के बिना स्वातन्त्र्य-रक्षण तथा हिन्दू-राज्य-प्रस्तरण नहीं हो सकता था।

शिवाजी को यशवन्त सिंह का भी ध्यान था। शिवाजी हिन्दुओं से हिन्दुओं को नहीं कटवाना चाहते थे। अतएव उन्होंने यशवन्त सिंह से मिलना वि-चारा। एक रात्रि को वे गुप्त रूप से यशवन्त सिंह से मिले। पहिले तो यशवन्त सिंह ने उन को न पहिचाना पर अन्त में जब शिवाजी ने अपना परिचय दिया तो बड़े ही प्रसन्न हुए। शिवाजी ने जिस प्रकार से बात की थी उस का सारांश उल्लेखनीय है। जिस समय

शिवाजी वहां पहुंचे राठौर वीर उस समय चिन्तामग्न थे। प्रच्छिन्न शिवाजी को देख कर उन्होंने पूछा 'कहिये आप इस समय किसलिये पधारे हैं'?। प्रच्छिन्न वेशधारी ने कहा, 'महाराज क्षत्रियकुलदीपक वीर राठौर नरेश को दिल्लीश्वर का दास जान कर हमारे प्रभु शोकार्त्त हो रहे हैं। हा! जिस वीरपुङ्गव की ख्याति से समस्त राजस्थान ही नहीं किन्तु वस्तुतः भारतवर्ष भी परिपूर्ण हो रहा है। जिस वीर का क्षिप्रातट पर पर युद्ध-कौशल देख कर दुर्दग्ह औरङ्गजेब भी चकित हो गया, जिस वीर का सम्बन्ध उस हिन्दू कुल-तिलक के घराने से हो जिस ने म्लेच्छों का दास बनना कदापि स्वीकार न किया हो क्या उस वीर को मुसलमानों की ओर से लड़ना श्रेय है?। महाराज! आप राजपूत हैं और हम महाराष्ट्रगणों में भी राजपूत रक्त है अतः पिता पुत्र का युद्ध कदापि ठीक नहीं। भवानी हम लोगों को ऐसे युद्ध करने का आदेश नहीं देती है। महाराज! आप के साथ युद्ध करने में हिन्दू ही हिन्दुओं के सिरों को काटेंगे। हाय! वीर राजपूत अपने पुत्रों ही के हृदय में तलवार घुसेड़ कर रक्त से स्नान करेंगे! हा! क्या इस प्रकार से म्लेच्छों की विजय-कीर्त्ति प्रसरित करना उचित है?"। शिवाजी की ओजस्विनी वक्तृता

सुन कर यशवन्त सिंह विचलित हो गये । उन के सारे भाव एकदम पलट गये । रुकते हुए कण्ठ से उन्होंने कहा 'वीरवर ! तुम ठीक कहते हो पर मुझे इस समय कोई ऐसा नहीं दृष्टिगोचर होता है जो औरङ्गजेब से युद्ध कर भारत की रक्षा कर सके ।' शिवाजी ने कहा 'महाराज! ऐसा न समझिये' 'शिवाजी आप के आशीर्वाद से अवश्यमेव स्वदेश तथा स्वधर्म के गौरव साधन में कृतकार्य्य होंगे। नृपतिवर ! जिस दिल्लीश्वर ने हिन्दुओं का नाम काफ़िर रख छोड़ा है, जिस ने अनीति का परिचय दे कर जज़िया जारी किया है, जिस ने हिन्दू-मन्दिरों तथा पवित्र देवालयों का निरादर कर अपनी क्रूरता दिखलाई है उसी दिल्लीश्वर का सामना करने के लिये शिवाजी प्रस्तुत हैं। ऐसे समय आप को सर्वथा यही उचित है कि आप कुछ दिनों तक पूना से दूर रहें। इस प्रकार से. शिवाजी अपने कार्य्य साधन में सफल हो सकेंगे।"

यशवन्त सिंह ने शिवाजी की बात मानली । चलते समय जिस समय शिवाजी ने अपना परिचय दिया है उस समय हर्षोत्फुल्ललोचन से देखते हुए राठौरनरेश ने उन को आलिङ्गन कर विदा किया। यशवन्त सिंह से विदा हो कर शिवाजी सिंहगढ़ में चले आये।

शायस्ता खां जब से पूना में रहने लगा तब से वह

महाराष्ट्रों पर विशेष दृष्टि रखता था। उसको यह बात भली भांति ज्ञात थी कि महाराष्ट्र कितने चालाक हैं। शिवाजी को भी इस बात का पता मिल गया और खां साहब की सावधानी कुछ भी काम न आई। उन्होंने अपने कार्य्य की सिद्धि कर ही ली। शिवाजी को पता मिला कि अमुक दिन एक बरात पूना को जायगी। इसीके द्वारा उन्होंने अपना अभीष्ट सिद्ध करना विचारा। सिंह-गढ़ से लेकर पूना तक के समस्त पथों पर शिवाजी ने गुप्त रूपसे अपनी सेना बिठलादी। पच्चीस मावलियों को लेकर शिवाजी एक बाग़ में छिप गये। उस समय घोर तिमि-राच्छिन्न रजनी नितान्त निःशब्द थी। प्रकाश का नाम मात्र भी न था। ऐसे अवसर पर यदि एक भी जलता हुआ दीपक दिखलाई पड़ता तो शिवा जी का सारा कौशल खुल जाता, सुतरां निःशब्द अन्धकार में सेना सन्निवेशन करने लगी। ज्यों २ रात्रि का प्रगाढ़ अन्ध-कार बढ़ता गया त्यों २ शिवा जी की छिपी हुई सेना आगे बढ़ने लगी।

तिमिराधिक्य से वह बाग़, जिस में शिवाजी, तानाजी मूलसरे तथा पच्चीस मावली छिपे हुये थे, सब को दिखलाई नहीं पड़ता था। जाती हुई बरात बाग़ के पास आ गई और शिवाजी उस बरात में मिल गये।

क्रमानुसार पूना नगर का गोलमाल शान्त होगया। निस्तब्ध नगर में केवल चौकीदारों का शब्द कभी कभी सुनाई पड़ता था। बराती लोग शायस्ता खां के महल के नीचे से होकर जाने लगे। महल की ललनाएं झरोखों में बैठ कर बरात का आनन्द लूटने लगीं। धीरे २ बरात चली गई और महलों पर से देखने वाले भी शयन के लिये अपने २ स्थानों पर चले गये परन्तु शिवाजी चुपके से दुर्ग के नीचे छिप रहे। थोड़ी देर में बाजे इत्यादि का शब्द शान्त हो गया। रात्रि की गम्भीरता बढ़ती ही गई। इतने में कमन्द द्वारा शिवाजी के मावली योद्धा ऊपर पहुंच गये। कमन्द एक खिड़की के पास फेंका गया था और वह खिड़की शायस्ता खां के शयनागार में थी। खां साहब तथा उन के यहां की स्त्रियां उस समय शयनावस्था में थीं।

नवागन्तुकों के आने से शब्द हुआ और उस शब्द को सुन कर ऊँघती हुई स्त्रियां उठ बैठीं। चिराग़ जला कर देखा तो रौद्र मूर्त्ति धारण किये हुये मावली सामने खड़े हैं, हठात् एक भीषण चीत्कार हुआ। चीत्कार से समस्त महल में कोलाहल होने लगा। शायस्त खां भी जाग पड़े और अति शीघ्र ही उन को इस आपत्ति की सूचना मिल गई। 'किंकर्त्तव्यविमूढ़' खां साहब सोच

विचार में पड़ गये। अचानक मावलियों का दुर्ग में प्रवेश सुन ख़ां के देवता कूंच कर गये थे। ऐसे समय में ख़ां साहब ने भागना ही उचित समझा। इधर उधर देख कर एक दरवाज़े की ओर लपके पर वहां पहुंचते ही उन्होंने देखा कि काल के समान एक मावली बर्छी लिये हुए खड़ा है। ख़ां साहब वहां से भी उड़े और दूसरे दरवाज़े पर जा पड़े पर वहां भी वही अवस्था हुई। अब उन्होंने देखा कि सब द्वार घिरे हुए हैं। भाग्य-वश उनकी दृष्टि खिड़की की ओर गई। ऐसी आपत्ति में उन्होंने उसी से भाग कर अपने प्राण बचाना विचारा। इतने में 'हर हर महादेव' के शब्द से पास का मकान गूंज उठा। पलक मारते ही मावली वीर उस कमरे में भी आ गये। ख़ां साहब भागे और मावलियों ने उनका पीछा किया। ख़ां साहब इधर उधर देख खिड़की में लटक पड़े। इतने ही में एक मावली वीर ने लपक कर शस्त्राघात किया जिससे शायस्ता ख़ां की दो अंगुलियां कट गईं पर ख़ां ने पीछे मुड़ कर न देखा और साफ़ निकल भागे।

खां साहब तो येन केन प्रकारेण अपने प्राण बचा ले गये पर उन्होंने अपने परिवार की कुछ भी खबर न ली। सारे प्रहरियों सहित खां का पुत्र अबुलफ़तह इस

लोक से चल बसा। उस समय शिवाजी ने देखा कि सारा महल रक्त से रञ्जित हो रहा है। भीषण रूप धारण कर मावली मुसलमानों के सिरों को भुट्टों की तरह काट २ कर इधर उधर फेंक रहे हैं। सारे प्रासाद में आहतों का आर्त्तनाद, तलवारों की झनझनाहट तथा वीरों के वीर शब्दों से परिपूरित हो रहा था। दुर्ग का द्वार खोल दिया गया। वाहर की सेना ने भी दुर्ग में प्रवेश किया। वीरों के हुंकार से समस्त दुर्ग कांप उठा। नवागन्तुकों की वीर-शब्द-ध्वनि ने मुसलमानों के हृदयों को तोड़ दिया। कुछ आगा पीछा न सोच कर मुसलमान भागने लगे। इतने में एक मुसलमान वीर ने डांट कर कहा, 'कायरों, काफिरों से क्यों डरते हो, आओ एक वार मिल कर इनको मार भगावें।' उस के शब्द से मुसलमान वीर रुके और वह आगे बढ़ा। आगे बढ़ते ही उसने शिवाजी को देखा। उनके देखते ही उस के हृदय में आग लग गई। खड्ग को बढ़ा कर उसने शिवाजी पर आक्रमण किया। अचानक यवन-योद्धा की खड्ग को अपने सिर पर देख कर शिवाजी ने भवानी का नाम लेकर अपने बर्छे को संभारा पर पलक मारते ही क्या देखते हैं कि एक वीर हवलदार ने अपने बर्छे के आघात से उस यवन को भूतलशायी कर दिया है। हवलदार के कार्य्य से प्रसन्न हो कर शिवाजी आगे

बढ़े । आगे बढ़ कर क्या देखते हैं कि स्त्रियों एवं बालकों के आर्त्त शब्द से महल परिपूर्ण हो रहा है । वीर मावली मुसलमानों को मारते काटते हुए इतस्ततः दौड़ रहे हैं । मशालों द्वारा हताहतों की दशा साफ दिखलाई देने लगी । किसी का सिर अलग पड़ा हुआ है, किसी का कबन्ध उठ २ कर तलवारों के हाथ फेंक रहा है, किसी के हाथ पैर कटे पड़े हैं, रक्त की नाली बह रही है । ऐसी दशा देख कर वीर मावलियों को शिवाजी ने अपने पास बुला कर और सम्बोधन कर के कहा, "अब व्यर्थ और हत्या न की जाय । हमारा कार्य्य सफल हो गया" ।

लड़ाई शान्त हुई, दुर्ग से बचे हुए मुसलमान निकाल दिये गये । एक बार पुनः शिवाजी का हृदय विकसित हो गया । जिस दुर्ग में उन्होंने बाल्यावस्था के वर्षों को व्यतीत किया था वही पुनः उन के अधिकार में आ गया—यह देख उन के हृदय में आनन्द स्रोत बहने लगा । अन्धकारमय रजनी में शिवाजी अनायास ही पूना से निकल कर सिंहगढ़ की ओर बढ़े । मशालों की रोशनी में शायस्ता खां ने देखा कि महाराष्ट्रों की सेना सिंहगढ़ को चली जा रही है । दूसरे ही दिन कुछ मुग़लों ने सिंहगढ़ पर चढ़ाई की पर सिंहगढ़ की

तोपों के सामने वे न ठहर सके। थोड़ी ही देर में उन के पैर उखड़ गये और वे भाग निकले। भागती हुई सेना का नेताजी पाल्कर ने पीछा किया और थोड़ी दूर तक उन को खदेड़ कर लौट आये।

यह प्रथम ही अवसर था जब कि महाराष्ट्रीय-सैन्य ने दुर्दान्त मुग़लों का मुख-मर्दन किया था। इस विजय ने शिवाजी की ख्याति को बहुत ही बढ़ा दिया। इस विजय को प्राप्त कर शिवाजी ने औरङ्गजेब के अधिकृत किये हुए स्थानों पर अधिकार करना प्रारम्भ किया। यह घटना सन् १६६३ में हुई थी। इन के पश्चात् शिवा जी का आक्रमण सूरत पर हुआ।

सूरत इस समय व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था। यूरोप तथा पश्चिमीय एशिया से सामुद्रिक व्यापार यहां बहुत होता था। बड़े २ धनशाली महाजन यहां रहते थे। भारतवर्ष में अङ्गरेजों ने पहिले पहिल सूरत ही में अपनी कोठी खोली थी। सूरत नगर उस समय भारतवर्ष के प्रायः समस्त नगरों से व्यापार में बहुत ही बढ़ा चढ़ा हुआ था। मक्का जाने के लिये यही प्रधान बन्दरगाह था अतएव हज्ज करने वालों की खूब ही भीड़ रहती थी। देशी एवं विदेशी व्यापारियों की यहां कुछ कमी नहीं थी। हालैण्ड तथा पुर्तगाल वालों ने भी यहां

अपनी कोठियां खोल रक्खी थीं। इन सब बातों के कारण सूरत उस समय एक प्रभूत धनशाली नगर था। उस की अपार सम्पत्ति का हाल सुन कर शिवाजी ने उसे लूट लेना विचारा। कहा जाता है कि शिवाजी गुप्त रूप से कई दिनों तक सूरत में घूम कर उस के अतुल सम्पत्ति की थाह ली थी। सन् १६६४ में एक दिन क्या देखते हैं कि ४००० सवारों को ले कर शिवाजी सूरत पर चढ़ आये हैं। इस चढ़ाई के कारण नगर में हाहाकार मच गया। लोग इधर उधर भागने लगे पर शिवाजी की सेना ने किसी को भी न सताया। छै दिन तक नगर तथा मक्का यात्रियों को लूट कर शिवाजी वहां से लौट पड़े। उस समय अङ्गरेजी कम्पनियों के प्रेसीडेण्ट सर जार्ज आक्स्यनडाइन थे। केवल उन्हीं ने शिवाजी का मुक़ाबला किया और किसी देशी अथवा विदेशी ने नहीं किया। उन्हों ने अपनी कोठियों की रक्षा बड़े साहस से की और उन के आदमियों ने भी बड़ी वीरता दिखाई अतएव अंगरेजी कोठियां लुटने से बच गईं। उन के आस पास और लोगों की जो दुकानें और मकान थे वह भी बच गये। हां अंगरेजों का एक बाग जो बहुत ही खूबसूरत था, अवश्य नष्ट हो गया। शिवाजी की फौज ने उस को उजाड़ दिया। "शिवाजी सूरत से अपरिमित

धन लूट ले गये हैं" जब इस बात की ख़बर दिल्ली पहुंची और सर जार्ज की वीरता का हाल बादशाह ने सुना तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उस ने सर जार्ज के लिये एक खिलत भेजी और कम्पनी के माल पर ढाई रुपया सैकड़ा महसूल भी कम कर दिया। थोड़े दिनों के बाद शिवाजी ने दुबारा सूरत पर आक्रमण किया। इस वार भी खूब लूट मार हुई और शहर में आग लगादी गई। शहर के मुसलमान अधिकारी से कुछ करते धरते न बन पड़ा परन्तु अङ्गरेजों ने इस वार भी अपने माल असबाब को लुट जाने से बचा लिया।

प्रथमवार सूरत को लूट कर जब शिवाजी रायगढ़ लौटे थे तब उन के पिता का देहान्त होचुका था। इस खबर को उन्होंने रायगढ़ ही में सुना था। विधिवत् श्राद्धादि कार्य्य करने के लिये शिवाजी सिंहगढ़ गये और वहां सब कामों को निबटा कर पुनः रायगढ़ लौट आये। शाहजी ने अपनी मृत्यु के समय बङ्गलौर के आसपास की बहुतसी जागीर तथा आरती, तञ्जोर, पोर्टोनोवो इत्यादिक अन्य जागीर भी छोड़ी थीं जो पश्चात् शिवाजी के अधिकार में आगईं।

तेरहवां परिच्छेद।

—:o:—

रुद्रमण्डल विजय।

जिस समय शायस्ता ख़ां दुर्ग से भाग निकला था उस समय औरङ्गजेब को एक पत्र लिखा। उस पत्र में उसने अपनी सेना की यथेष्ट निन्दा की थी और साथ ही साथ यह भी लिख दिया था कि जसवन्त सिंह के हार्दिक भाव शिवा जी की ओर झुक गये हैं। पत्र को पा कर औरङ्गजेब ने उलटा शायस्ताख़ां को बुला लिया और सन् १६६४ में अपने पुत्र मुअज्ज़म को 'दक्षिण' का सूबेदार बना कर भेजा, कुछ सोच समझ कर राजा यशवन्त सिंह को उस की सहायता के लिये भेज दिया। इन दोनों से अपनी कार्य्य सिद्धि न होती देख उसने प्रसिद्ध आमेराधिपति राजा जयसिंह को रवाना किया। सन् १६६५ ई० के चैत्र मास के अन्त में आमेराधिपति दल बल सहित पूना पहुंच गये। इन के साथ में मुग़ल सरदार दिलेरख़ां भी था। शायस्ता ख़ां की तरह बेकार न पड़े रह कर मिर्ज़ा राजा ने दिलेर ख़ां को पुरन्धर दुर्ग को अवरुद्ध करने को भेजा और स्वयं सिंहगढ़ को घेर कर रायगढ़ तक अपनी सेना को अग्रसर किया।

, शिवाजी बड़ी आपत्ति में पड़े । हिन्दुओं का हिन्दुओं से सिर कटाना शिवाजी को कदापि अभीष्ट न था । कहते हैं कि भवानी ने उन को ऐसा करने से मना किया था । दूसरी बात यह भी थी कि मुग़ल साम्राज्य में जयसिंह की समता का कोई भी तीक्ष्णबुद्धि योद्धा न था अतएव उन पर विजय पाना कुछ सहज काम न था । जय सिंह ने अपना काम प्रारम्भ कर दिया था । दिलेर ख़ां पुरन्धर पहुंच गये थे, उस समय पुरन्धर में मुरार बाजी देशपाड़े थे । उन्हों ने बड़ी वीरता से दिलेर ख़ां को रोका । कई दिन युद्ध हुआ पर अन्त में मुरार बाजी मारे गये । पुरन्धर मरहटों के हाथ से जाता रहा । एक के बाद दूसरे दुर्ग को मुग़ल सेना हथियाने लगी । शिवाजी अपनी अधिष्ठात्री देवी के मन्दिर में गये और ध्यानमग्न हो कर देवी की आराधना करने लगे । ध्यानावस्था में उन को ऐसा भासित हुआ कि मानो देवी उन को जयसिंह से युद्ध करने से रोक रही है । ध्यानमग्न होने पर शिवाजी ने जय सिंह से सन्धि करना ही उचित समझा । सन्धि शीघ्र ही हो गई । मुग़लों के जिन २ दुर्गों पर शिवाजी ने अपनी विजय-पताका फहिरा दी थी उन को मुग़लों को वापिस दे दिया । विलुप्त अहमदनगर राज्य के

टूटे फूटे दुर्गों को, जिनको शिवाजी ने ठीक करवाया था, तथा और जो नये २ दुर्ग बनवाये थे उन ३२ दुर्गों में से २० दुर्ग औरङ्गजेब को दे दिये और बाकी १२ दुर्ग शिवाजी के पास बतौर जागीर के छोड़ दिये गये। औरङ्गजेब को शिवाजी ने जो २ प्रदेश दे दिये थे उन के बदले मुग़ल सम्राट् ने शिवाजी को बीजापुर राज्यान्तर्गत कुछ प्रदेश दे दिये और साथ ही इस के उन के पुत्र शम्भाजी को पांच हजारी मनसबदार नियत किया।

उपर्युक्त सन्धि हो जाने के बाद राजा जयसिंह ने बीजापुर पर चढ़ाई की। शिवाजी ने भी राजा जयसिंह का साथ दिया। शिवाजी की वीरता के कारण आमेराधिपति उन का बड़ा मान करते थे। सहवास के कारण उन दोनों की मित्रता दिन २ घनिष्ठ होने लगी। दोनों वीर सदा एक ही साथ रहते थे। चढ़ाई में एक दूसरे को सहायता पहुंचाते थे। थोड़े ही दिनों में इन दोनों वीरों ने बीजापुर के कतिपय दुर्ग छीन लिये। अब के शिवाजी ने दुर्गम पर्वतीय रुद्रमण्डल दुर्ग के लेने का विचार किया। यह दुर्ग राजा जयसिंह के डेरे से समीप था परन्तु शिवाजी से ५ या ६ कोस की दूरी पर था। एक रात्रि को मावली सज्जित होने लगे। एक प्रहर रात्रि

व्यतीत होने पर १ सहस्र मावली रुद्रमण्डल की ओर चुपचाप शीघ्रता से चलने लगे। विकट अंधेरी रात्रि में महाराष्ट्रीय सेना दुर्ग के नीचे पहुंच गई। इस दुर्ग के चारों ओर समभूमि है परन्तु उस के मध्य में उच्चशृङ्ग है जिस के ऊपर रुद्रमण्डल दुर्ग बना हुआ है। शिखर प्रायः सीधा खड़ा है अतएव उस के ऊपर की चढ़ाई बिल्कुल सीधी पड़ती है जिस के कारण उस के ऊपर चढ़ना कुछ हँसी खेल की बात नहीं है।

शिवाजी ने देखा कि दुर्ग पर जाने के लिये केवल एक रास्ता है वह भी युद्ध-समय होने के कारण सुरक्षित रक्खा जाता है और अन्य स्थान से आक्रमण करना प्रायः असम्भव सा प्रतीत होता है पर असम्भव को सम्भव कर दिखलाने के लिये शिवाजी ने दुर्गम पथावलम्बन किया। धीरे २ शिवाजी की सेना पर्वत पर चढ़ने लगी। सैनिक कहीं लेट कर, कहीं पेट के बल, कहीं घुटने टेक कर और कहीं डालियां पकड़ कर ऊपर चढ़ते थे। थोड़ी दूर आगे बढ़ कर शिवाजी ने देखा कि परिखा पर बहुतसी मशालें जल रही हैं। हठात् शिवाजी रुक गये। उन को ज्ञात होगया कि दुर्गरक्षक मेरे आक्रमण से अभिज्ञ होगये हैं अतएव शिवाजी ने बड़ी सावधानी से अपने सैनिकों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। शैल-

राशियों पर कूदते फांदते वीर महाराष्ट्र चुपचाप आगे बढ़ने लगे। सामने सौ हाथ का मैदान दिखलाई पड़ा जिसके आगे वृक्षों का सिलसिला था। ऐसे मैदान से दृष्टि बचा कर आगे बढ़ जाना नितान्त असम्भव समझ कर शिवाजी ने अपने सुहृद् तानाजी से कुछ सलाह की। सलाह होजाने के बाद शिवाजी ने एक छोटासा पथरीला नाला देखा जिसके दोनों किनारे ऊंचे उठे हुए थे। उसके भीतर चलने से सम्भवतः शत्रु महाराष्ट्रीय सैनिकों को नहीं देख सकते थे। सारी सेना उस नाले में होकर आगे बढ़ने लगी। थोड़ी देर में सेना वृक्षों के समीप पहुंच गई। शिवाजी ने मन ही मन भवानी को नमस्कार किया।

अचानक एक महाराष्ट्र सैनिक गिरा। देखा गया तो उसका वक्षःस्थल एक तीर से विदीर्ण होगया है। देखते ही देखते दूसरा सैनिक धराशायी हुआ। सनसनाते हुए तीसरे तीर ने तीसरे योद्धा को पृथ्वी पर गिरा दिया। अब तो तीरों की बौछार होने लगी। शिवाजी की समस्त सेना पेड़ों की आड़ में होगई। शिवाजी ने जान लिया कि शत्रु युद्ध के लिये सन्नद्ध हैं अतएव आज हम को दुर्ग-विजय में भीषण युद्ध करना होगा। इतने में तानाजी ने आकर कहा 'अच्छा होगा कि हम लोग लौट पड़ें। यदि दुर्ग आज न मिला तो कल मिल जायगा।

निरर्थक सेना के कटाने से क्या लाभ होगा ?' गम्भीर-भाव धारण कर शिवाजी ने कहा 'तानाजी ! यह क्या कहते हो ? दुर्गमण्डल आज ही जीता जायगा' । इतना कह कर शिवाजी चुपचाप उस वृक्ष श्रेणी से आगे बढ़ने लगे और शत्रु को अन्धा बनाने के लिये १०० सैनिकों को दूसरी ओर से आक्रमण करने के लिये भेजा। शीघ्र ही शिवाजी ने दुर्ग के दूसरी ओर गोलियों का शब्द सुना । शिवा जी का प्रयोजन सिद्ध हो गया । शत्रुओं ने यह समझा कि शिवा जी ने उधर से ही आक्रमण किया अतः उसी ओर दौड़ने लगे। ऐसे उपयुक्त समय को पा कर शिवाजी ने दुर्ग पर आक्रमण किया और आक्रमण करते समय अपने सैनिकों को सम्बोधन करके कहा, 'वीरो ! चलो आज अपनी शूरता का परिचय दो, तुम लोगों ने भीम विक्रम अनेक वार दिखलाये हैं पर आज उस भीमविक्रम को पराकाष्ठा पर पहुंचाना है । वीरो ! वीरों को ऐसा समय बड़ी कठिनता से मिलता है। अब क्या देखते हो आओ, आगे बढ़ें; इत्यादिक शब्दोच्चारण करते हुए शिवाजी आगे बढ़ने लगे, सामने देखते हैं कि तानाजी खड़े हैं । शिवाजी ने उन को गले से लगाते हुए कहा 'सुहृद वर ! बाल्यावस्था की प्रगाढ़ मैत्री का अब इस कठिन समय पर परिचय दीजिये ।

शिवाजी के उत्साह-वर्द्धक शब्दों से वीरों के हृदय वीर-रस-पूर्ण हो गये। अल्पकाल ही में शिवाजी गढ़ की प्राचीर के पास पहुंच गये। उस समय उन्हों ने परकोटे पर एक सिपाही को देखा। देखते ही देखते एक वीर मावली के तीर ने उस की देह से प्राण हरण कर लिये। सिपाही के नीचे गिरने का शब्द हुआ जिस को सुन कर कई सौ सैनिक वहां आ गये। अब शिवाजी ने विचारा कि छिपने की कुछ आवश्यकता नहीं है और न अब छिपने से काम ही चल सकता है। यह सब सोच विचार कर शिवाजी ने अपने वीर मावलियों को अग्रसर होने की आज्ञा दी 'हर हर महादेव' का गगन-भेदी वीररव करते हुए महाराष्ट्र दीवार के ऊपर चढ़ने लगे। एक दल वृक्षों की आड़ लेकर क़िले की दीवार पर खड़े हुए सैनिकों पर शस्त्र छोड़ने लगा। उधर से भी 'अल्लाहो अकबर' का शब्द आकाश को कम्पित करने लगा। शीघ्र ही घमसान लड़ाई होने लगी। तीर और बर्छों की मार से सनिक पृथ्वी पर लोटने लगे। थोड़ी ही देर में प्राचीर-पार्श्व शवों से परिपूर्ण होगया। लहाशों ने टीलों का काम दिया। योद्धागण उन्हीं पर खड़े हो कर शस्त्राघात करने लगे। मुसलमान भी उग्र रूप धारण कर प्राचीर पर से कूद२ कर मावलियों के मध्य में आने लगे। इतने में

दुर्ग के भीतर से 'शिवाजी की जय' शब्द सुना गया सब ने उसी ओर कान लगाये और पुनः वही शब्द सब को सुनाई दिया। इस वज्रनाद ने वहां की लड़ाई को एक क्षण के लिये रोक दिया पर इस का तात्पर्य्य थोड़ी देर में सब की समझ में आ गया। दूसरी ओर के गये हुए सैनिकों ने दुर्ग में प्रविष्ट हो कर सिंहनाद किया था। अब क्या था, मुसलमानों का उत्साह भङ्ग होने लगा। वे लोग भेड़ों की तरह एक ही ओर को दौड़ने लगे। शिवाजी भी प्राचीर पर चढ़ने का उद्योग करने लगे और अन्त में सफलीभूत हुए। प्राचीर पर खड़े हो कर महाराष्ट्रों ने देखा कि एक महाराष्ट्रीय युवा ने पठानों के झण्डे को लात मार कर नीचे को गिरा दिया है और उसी पर खड़ा हो कर 'महाराज शिवाजी की जय' बोल रहा है।

शिवाजी ने दुर्ग में प्रवेश किया और दुर्ग के द्वार की ओर बढ़े। प्रहरियों को यमपुर पहुंचा कर द्वार-रक्षक से द्वार खोलने को कहा परन्तु उस ने कहा कि 'दरवाजा नहीं खोला जायगा'। 'नहीं खोला जायगा?' कह कर एक महाराष्ट्रीय ने उस के सिर को बर्छे से छेद डाला और वहां आग लगा दी। थोड़ी ही देर में समस्त दुर्ग में अग्नि भभक उठी। इस अग्नि-

काण्ड की कतिपय वीर मावली भी आहुति हो गये। फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ पर मुसलमानों के पैर उखड़ गये और दुर्ग को छोड़ कर भागने लगे। शिवाजी के अधिकार में दुर्ग आ गया। जिस समय दुर्ग-विजय की खबर जयसिंह के पास पहुंची तो उन्हों ने आश्चर्य्यान्वित हो कर कहा था कि 'यह दुर्ग इतनी जल्दी हस्तगत हो जायगा इस की मुझे आशा न थी'।
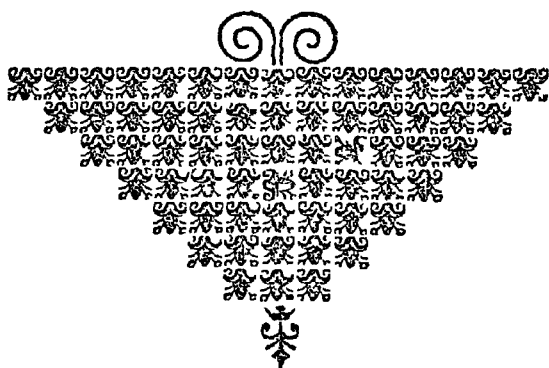
चौदहवाँ परिच्छेद ।

दिल्ली में शिवाजी ।

शिवाजी ने जयसिंह से जो सन्धि की थी उस का कुछ वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। उस में अन्य प्रस्तावों के सिवाय एक यह भी प्रस्ताव था कि मैं एक लाख 'पागोडा' वार्षिक बतौर ख़िराज के दिया करूंगा और इसके लिये सम्राट् शिवाजी को बीजापुर के इलाक़े पर 'सर-देश मुखी' तथा 'चौथ' लगाने की आज्ञा देंगे। औरङ्गजेब के पास जब सन्धि-प्रस्ताव पहुंचा तब उस ने सब बातें तो मंज़ूर करलीं पर 'चौथ' तथा 'सरदेशमुखी' के बारे में चुप्पी साध गया और शिवाजी को कुछ उत्तर न मिला। जब शिवाजी को कुछ उत्तर न मिला तब उन्होंने यह मतलब निकाल लिया कि कुछ उत्तर न देना भी एक प्रकार की मंज़ूरी ही है। तदनुसार उन्हों ने चौथ जारी की। जिस समय राजा जयसिंह शिवाजी की सहायता से बीजापुर को फ़तह कर रहे थे अचानक औरङ्गजेब का निमन्त्रण-पत्र आया जिस में उन्हों ने शिवाजी को अपने दरबार में बुलाया था।

शिवाजी ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। पाठक! यहां पर कदाचित् चकित हुए होंगे कि शिवाजी सरीखे

नीतिज्ञ पुरुष जान बूझ कर औरङ्गजेब के कपट-पाश में फंसने को उद्यत हो गये। सच तो यों है कि शिवाजी ने दिल्ली जाने में भी अपनी राजनैतिक शक्ति की पारदर्शिता दिखाई थी। दिल्ली में उन का जाना उन के निमित्त अतीव लाभदायक था। प्रथम तो इसलिये कि औरङ्गजेब के दरबार में बहुत से ऐसे राजपूत वीर सरदार थे जो हृदय से शिवाजी से सहानुभूति रखते थे पर स्वयं सहायता देने में असमर्थ थे। ऐसे वीर-पुङ्गवों से मिलना शिवाजी के लिये अत्यन्त उपयुक्त था और दूसरे वैरी के घर में प्रवेश कर उस के यहां की अवस्था से परिचित होने का भी अच्छा अवसर था। जाने के पूर्व शिवाजी की राजा जयसिंह से बातचीत हुई थी। उस में शिवाजी ने कहा था कि कहीं ऐसा न हो कि मुझे धोखा दे कर वह फंसा ले पर जब राजा जयसिंह ने ऐसा न होने का वचन दे दिया तो शिवाजी सहर्ष चलने को उद्यत हो गये। सन् १६६६ के वसन्तकाल में पांचसौ सवार, एक हज़ार पैदल सेना को लेकर शिवाजी दिल्ली की ओर चले। साथ में पुत्र शम्भाजी तथा एक दो और विश्वस्त मित्र भी थे।

दिल्ली में प्रवेश करते ही शिवाजी का हृदय कांप उठा। पीछे की ओर मुड़ कर सोचने लगे कि हाय! क्या

यह वही दिल्ली है जिस में चौहानराजा पृथ्वीराज स्वातन्त्र्य धारण कर राज्य करते थे। पर काल-चक्र के कारण उसी दिल्ली की यह अवस्था है। एक पास के खड़े हुए साथी से शिवाजी ने कहा कि मैं जिस स्थान पर खड़ा हुआ हूं उस के प्राचीन गौरव पर विचार करने पर उन महामान्य राजाओं की अखिल कीर्त्ति का स्मरण आने से स्वप्न की तरह नवीन२ आशाएँ उठने लगी हैं। क्या भारत के विशाल-कीर्त्ति-क्षेत्र में सदा के लिये अंधेरा ही लिखा है? नहीं, भारत का सौभाग्य-सूर्य्य एक वार पुनः उदय होगा'। इस प्रकार बातें करते वे शहर पनाह तक पहुंच गये।

दिल्ली आज मनोहर शोभा धारण किये हुए थी। इतिहास पढ़ने वाले भली भांति जानते हैं कि सम्राट् औरङ्गजेब तड़कभड़क को कितना नापसन्द करता था। स्वयं भी सर्वदा सामान्यवेश में रहता था पर वह इस बात को यथावत् जानता था कि राजकीय-कार्य्य-साधनार्थ चमक दमक की आवश्यकता होती है। शिवाजी आज आ रहे हैं, दिल्ली को वे देखेंगे अतएव 'पहाड़ी चूहे' पर अपना आतङ्क जमाने के लिये औरङ्गजेब ने इन्द्र-समता का परिचय देना आवश्यक समझा क्योंकि अर्थ-प्राचुर्य्य देख कर शिवाजी अपनी हीनता समझ जायँगे

अतएव आज दिल्ली खूब ही सजाई गई थी। जिस समय प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय वीर ने दिल्ली में पैर रक्खा, दिल्ली में एक प्रकार की हलचल मच गई। 'जो जैसई तैसई बुद्धि धावा' वाली कहावत चरितार्थ हुई। कुल-कामनियां झरोखों में बैठ कर चिरस्मरणीय योद्धा को देख कर अपने नेत्रों को सुफल करने लगीं। शिवाजी भी अपूर्व शोभा को देखते हुए आगे बढ़ने लगे। थोड़ी देर के बाद शिवाजी 'दीवान आम' के पास जापहुंचे। औरङ्गजेब के समय में 'दरबार आम' बहुधा नहीं हुआ करता था। वह अपने वजीरों के साथ ही बैठ कर राज्य-काज किया करता था पर आज आडम्बर लाद कर वह 'दरबिआरा म' बैठा था। शिवाजी ने भी ये सब बातें ताड़ लीं थीं। अब उन को यह यह देखना था कि आज औरङ्गजेब उन का किस प्रकार से आतिथ्य-सत्कार करता है।

जिस समय वे राजमहल में प्रविष्ट हुए उन्हें मालूम हुआ कि वे एक साधारण कर्मचारी की भांति उस के महलों में खड़े हैं। जिसने २० वर्ष पर्य्यन्त रक्त बहा कर स्वजाति एवं स्वदेश की रक्षा की थी आज वही वीर पुरुष शाहंशाह की मुलाकात करने के लिये राजप्रासाद में आये हैं। अपने चारों ओर देख शिवा जी ठहर

गये। उन के चक्षुओं के भाव बदल गये, कुछ भृकुटियां चढ़ गईं, सारा रक्त उबल उठा, क्या ख्याल कर ? यही कि आज हमें 'नज़र' देनी पड़ेगी। कहते हैं कि जिस दरवाज़े से शिवाजी दरबार में प्रवेश करने को थे औरङ्गजेब ने उसे बहुत ही नीचा बनवाया था। वह जानता था कि शिवाजी उसके सामने नहीं झुकेंगे अतएव छोटे दरवाज़े के कारण उनको सिर झुका कर आना पड़ेगा और इस प्रकार से उनका सिर नीचा हो जायगा। दरवाज़े पर शिवाजी आ कर ठहर गये और कुछ देर तक विचार कर आगे बढ़े पर आगे को सिर झुका कर नहीं किन्तु अच्छी तरह से तन कर और यहां तक तने कि सिर पीठ की ओर बहुत झुक गया और इस प्रकार से भीतर पहुंच कर सिंहासन के सामने 'नज़र' रक्खी। औरंगजेब ने नज़र ग्रहण की परन्तु शोक ! उसने शिवाजी का किञ्चित् मात्र भी आदर न किया और पांच हज़ारियों के स्थान पर उनको बैठने का आदेश दिया। अपना यों निरादर होता हुआ देख उनके नेत्र अग्निवत् प्रज्वलित हो उठे। क्रोधावेश के कारण उन का सारा शरीर कांपने लगा पर फिर कुछ सोच समझ कर उन्हों ने गम्भीर एवं शान्त भाव धारण किया।

दरबार ख़तम हुआ, शिवाजी के रहने के लिये एक

मकान निर्दिष्ट किया गया और सन्ध्या होते २ शिवाजी उस मकान में पहुंच गये। प्रातःकाल जो उन्होंने उठ कर देखा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उन का सारा मकान पहरेदारों से घिरा हुआ है। थोड़ी देर में यह भी जान लिया कि शस्त्रधारी पहरेदार जब तक अच्छी तरह से परिचय नहीं पालेते हैं तब तक किसी को भी भीतर नहीं आने देते हैं। शिवाजी जान गये कि वे बन्दी कर लिये गये। वनराज पिंजड़े में फंस गया। शिवाजी औरङ्गजेब के बन्दी हो गये।

औरङ्गजेब की कपट-लीला स्पष्ट रूप से प्रकट हो गई। सम्मान सूचक पत्र से भुलावा दे कर यवन-सम्राट् ने शिवाजी को फांस लिया। शिवाजी ने अपने मन में कहा, 'औरङ्गजेब! तुमने शिवाजी को नहीं पहिचाना है, अब की वार तुम देख लोगे कि दगाबाज़ी करने में क्या मज़ा मिलता है।' अब शिवाजी उस के कपट-जाल को काट कर बाहर निकलने का यत्न करने लगे। यत्न सिद्ध करने के लिये शिवाजी को बीमार बनना पड़ा। थोड़े ही दिनों में सारी दिल्ली में यह बात फैल गई कि शिवाजी को अतिशय सङ्कटजनक पीड़ा है। अहर्निश शिवा जी के मकान के दरवाज़े तथा खिड़कियां बन्द रहती थीं। वैद्यों की अच्छी ख़ासी भीड़ वहां लगी

रहती थी। रोग दिन २ बढ़ता जाता था। उस समय दिल्ली में यह ख़बर थी कि यदि दो एकदिन शिवाजी का ऐसी ही पीड़ा रही तो उन का प्राणान्त हो जायगा। लोगों के सामने औरङ्गज़ेब भी खूब शोक प्रकट करने के साथ ही शिवाजी पर चौकसी पूरी रखता था।

थोड़े दिनों के बाद नगर में यह खबर फैली कि शिवाजीने रोग-निवृत्ति-निमित्त दान करना प्रारम्भ किया है। मिष्टान्न दान होने लगा। बड़े २ झालों में मिठाइयां बांटी जाने लगीं। एक बार दिल्ली में लड्डुओं की वर्षा हुई। ऐसे अवसर पर जो चूक गया वह बहुत दिनों तक पछताया। अन्त में एक दिन इन्हीं झालों में शिवाजी तथा शम्भाजी बैठ गये और चुपचाप बाहर निकल गये। पहरेदारों को कुछ सन्देह भी न हुआ क्योंकि शिवाजी प्रतिदिन बड़े बड़े झालों * में मिठाइयां बांटते थे। बहुत दूर निकल जाने के बाद झावे उतारे गये। सायंकाल की अन्धियारी अच्छी तरह छा गई थी। झावे खोले गये और शिवा जी एवं शम्भाजी बाहर निकल आये। निकल आने के बाद दोनों ने

* कभी २ इन झावों की उंचाई तीन या चार हाथ की होती थी, जिन को ८ या १० कहार उठा कर ले जाते थे।

भवानी को प्रणाम किया। जिस औरङ्गजेब ने अपने असाधारण चातुर्य्य, बुद्धि-कौशल, तथा रणनैपुण्य से अपने भाइयों को परास्त किया था, जिसने बाप को दगाबाज़ी से बन्दी कर लिया था, जिसने चालाकी से तख्त ताऊस ले लिया था उसी औरङ्गजेब की आंखों में धूलि झोंक कर शिवाजी अंगूठा दिखला कर उस के पञ्जे से निकल आये।

झालों में से निकल कर शिवाजी तथा शम्भा जी ने सन्यासियों का वेश धारण किया और 'हरेनाम, हरेनाम' कहते हुए आगे बढ़े। रास्ते में किसी पहरेदार ने टोका तो कह दिया कि 'बाबा! हम तीर्थ स्थान मथुरा-वृन्दावन को जा रहे हैं'। ऐसा उत्तर पाने पर उन को पुनः किसी ने न रोका। घूमते फिरते शिवाजी रायगढ़ पहुंच गये। वहां जा कर उन्होंने अपने राज्य की अवस्था देखी और उसको उसी सुप्रबन्ध में पाया जैसा कि वे १० मास पूर्व छोड़ गये थे। शिवाजी के रायगढ़ में पहुंचने की खबर अग्नि-शिखावत् प्रसरित हो गई। अपने सेनापति से परामर्श कर उन्होंने कहा, "बन्धुगण! प्रायः एक वर्ष व्यतीत हुआ कि जब हम ने औरङ्गजेब से सन्धि की थी पर अपने कपटाचार के कारण उस ने अपनी सन्धि तोड़ दी। अब हम पुनः अधर्मियों से युद्ध करेंगे।"

युद्ध प्रारम्भ हुआ, शिवाजी विजय पर विजय पाने लगे, दुर्ग के पश्चात् दुर्ग उन के हाथ में आने लगे। मोरोपन्त वीरता का परिचय दे कर पूना के उत्तरस्थ दुर्गों को अधिकृत करने लगे। राजा जयसिंह अब इस संसार मे नहीं थे अतएव शिवाजी को रोकने वाला कोई भी न था। शिवाजी ने सन्धि द्वारा जो कुछ छोड़ा था उसे पुनः अपने अधिकार में कर लिया। यशवन्त सिंह और सुलतान मोअज़्ज़म एक बार फिर दक्षिण को भेजे गये पर उन से कुछ करते धरते नहीं बना।

शिवाजी के निकल जाने से औरङ्गजेब के हृदयमें असह्य धक्का लगा था। कदाचित् उस के जीवन में यह प्रथम ही घटना थी कि उसने ऐसी मुंह की खाई। शेर कटहरे से निकल गया, अब वह क्या कर सकता था? अन्त में उसको एक प्रकार से हार माननी पड़ी। उसने शिवा जी के पास सनद भेजी जिस में उसने उन को 'स्वाधीन राजा' करार दिया था और जुन्नार तथा अहमदनगर के सिवाय बरार में उन को एक जागीर प्रदान की। पूना, चाकन तथा सूपा की प्राचीन जागीरें उन के अधिकार में आ गईं परन्तु सिंहगढ़ तथा पुरन्धर उन को न मिल सके थे। सन् १६६७—६९ तक मुगलों ने

दक्षिणीय सुलतानों से युद्ध करना पड़ा था और शिवा जी की दक्षिण के मुग़ल सूबेदार से एक प्रकार की मैत्री थी अतएव उन्होंने उस को सहायता दी थी जिस के उपलक्ष्य में सन् १६६७ में गोलकुण्डा तथा बीजापुर से 'चौथ' तथा 'सरदेशमुखी' लेने का अधिकार उन को दिलवा दिया गया। इस के सिवाय उपर्युक्त दोनों शाहियों ने तीन २ लाख रु० वार्षिक भी देना स्वीकार किया पर सन् १६६९ में औरङ्गज़ेब ने अपने पुत्र को लिख भेजा कि तुम किसी न किसी प्रकार से शिवाजी को बन्दी कर लो। प्रतापराव गुज्जर को, जो उस समय ससैन्य औरङ्गाबाद में थे, इस बात का पता लग गया। वे चुप चाप वहां से चलते बने और उन्हों ने आ कर सब हाल शिवाजी को सुनाया। इस के पश्चात् शिवाजी पुनः मुग़लों से भिड़ गये। मुग़लों ने भी पूरा ज़ोर बांधा। इस युद्ध में सिंहगढ़ के लेने में महाराष्ट्रों ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया था।

सोलहवां परिच्छेद ।

तानाजी की महाकीर्त्ति ।

जिस समय शिवाजी ने राजा जयसिंह से सन्धि की थी उस समय शिवाजी के हाथ से सिंहगढ़ का दुर्ग भी निकल गया था। शिवाजी जब दिल्ली से निकल आये थे तब उन्हों ने पुनः अनेक दुर्गों पर अधिकार कर लिया था पर सिंहगढ़ अभी तक उन के अधिकार में नहीं आया था। हम पीछे लिख आये हैं कि औरङ्गजेब ने अपने पुत्र तथा यशवन्त सिंह को पुनः दक्षिण में भेजा था पर इन दोनों को अकर्मण्य जान कर उस ने उदयभानु नामक एक सरदार को पीछे से रवाना किया। 'सिंहगढ़-विजय' में यह दिखलाया गया है कि उदयभानु मेवाड़ का एक कुल-कलङ्क राजपूत था जो राणा राजसिंह से निकाले जाने पर औरङ्गजेब के यहां चला गया था। औरङ्गजेब ऐसे मनुष्यों की टोह में सदा रहता था अत-एव उदयभानु को पा कर वह अति ही प्रसन्न हुआ था। औरङ्गजेब ने उन की प्रतिष्ठा बढ़ा कर उस को अपने दरबार में एक उच्च पद प्रदान किया था।

औरङ्गजेब कभी भी किसी का विश्वास नहीं करता था और न वह किसी एक व्यक्ति विशेष की शक्ति को

बढ़ने देता था अतएव इन दोनों कारणों से उस ने उदयभानु को दक्षिण में भेजा था। औरंगज़ेब शिवाजी पर इतना खार खाये बैठा था कि यदि शिवाजी उस को मिल जाते तो ईश्वर जाने वह उन की क्या दुर्गति करता। शिवाजी का दिल्ली से निकल जाना उसे इतना बुरा लगा कि यदि कोई उस की दाढ़ी भी उखाड़ लेता तो कदाचित् उसे इतना बुरा न लगता पर इस समय वह क्या कर सकता था। वह सोचता होगा कि मैं इतना कुटिल-नीति-विशारद हो कर भी ऐसी मुंह की खा गया। इस से बढ़ कर और मेरी फ़ज़ीहत और बद-नामी क्या हो सकती है अतएव अब उस ने शिवाजी पर पुनः कुटिल नीति का जाल डालना चाहा पर शिवाजी की बुद्धि के आगे उस की दाल न गली और शिवाजी फिर उस के विश्वास में कभी न आये। औरंगज़ेब को मृत्यु-काल तक इस बात का पश्चात्ताप रहा।

उस ने उदयभानु को बुलाया और कहा—"तुम दक्षिण में जाओ और सिंहगढ़ के क़िले में जा कर रहो। सिंहगढ़ का क़िला शिवाजी को हाथ में लाने के लिये कुञ्जी है। जब तक वह हमारे अधिकार में है शिवाजी एक प्रकार से हमारे हाथ में है। सिंहगढ़ की रक्षा अच्छी तरह से करना क्योंकि शिवाजी इसी के लेने का यत्न करेगा।

इन के साथ ही तुम यशवन्त सिंह तथा मोअज्जम पर भी खूब कड़ी नज़र रखना।"

उदयभानु सिंहगढ़ में आकर रहने लगा। सिंहगढ़ का हम कुछ वर्णन पीछे कर आये हैं पर प्रसङ्गवश यहां पर फिर कुछ लिखना उचित है। सिंहगढ़ सुन्दर प्राकृतिक स्थान में बना हुआ है। चतुर्दिक् उच्च-पर्वत-श्रेणी खड़ी हैं। एक ओर सह्याद्रि अपनी गगनस्पर्शी शिखरों द्वारा अपने गाम्भीर्य्य का परिचय दे रहा है। इसी के पूर्व में सिंहगढ़ का दुर्ग है। इस के उत्तर और दक्षिण में भी उच्च शृङ्ग हैं जो इस को सहज ही में सुदृढ़ बनाते हैं। इन पहाड़ों पर चढ़ना अति कठिन है। आधे मील तक ऊपर चढ़ने पर छोटी दुर्गम पहाड़ियों को तै कर किले में पहुंचना होता है। दुरारोह पर्वतों से घिरा हुआ सिंहगढ़ त्रिभुजाकार बना हुआ है। इसके बीच मे अनुमान से दो मील का मैदान है। प्राकृतिक कारणों से यह दुर्ग एक प्रकार से अभेद्य है। इस दुर्ग के चारों ओर मछली पकड़नेवाले कहार रहते थे। जब तक उदयभानु के क़दम शरीफ़ यहां पर नहीं आये थे तब तक यह क़िला रायाजी के अधिकार में था। जब से उदयभानु यहां आगये तब से इस में खूब चौकसी रहने लगी। उसने दुर्ग की रक्षा के लिए उत्तम प्रबन्ध

कर डाला। संरक्षकों को बुलवा कर उसने यह आज्ञा दी कि कोई बाहरी आदमी इस किले में न आने पावे और बिना मेरी आज्ञा के कोई बाहर भी न जाने पावे। उसने चारों ओर कड़े २ पहरे बिठला दिये। किले के भीतर जितने बुर्ज तथा बुर्जियां थीं उन पर भी पहरेदार नियुक्त कर दिये गये। पहरेदारों के लिये जो नियम बनाये गये थे वे इतने कड़े थे कि बिचारों को निद्रादेवी से भेट करना कठिन हो गया था। इतना प्रबन्ध कर चुकने पर भी वह रात्रि को स्वयं निरीक्षण करता था और जिनको वह 'ड्यूटी' पर न पाता था उन को बड़ा कठिन दण्ड देता था।

इधर शिवाजी को भी उदयभानु के आने का पता मिल गया। अब के दुर्ग के विजय का भार तानाजी ने स्वयं अपने सिर पर लिया। माघ मास के अन्त में १००० मावलियों को लेकर तानाजी सिंहगढ़ को विजय करने चले। इन के साथ में इन के भाई सूर्य्यजी तथा दूर के नाते के शेलार मामा भी थे। इन सबों ने वहां पहुंच कर रायाजी को अपनी ओर मिला लिया। पांच छै रोज तक भेद लेने के पश्चात् रात्रि में दुर्ग पर चढ़ने के लिये जगह निकाली गई। स्थान निर्दिष्ट हो जाने पर यह प्रश्न उठा कि ऊपर

किस प्रकार चढ़ा जाय और सब से पहिले ऊपर कौन चढ़े ?। वृद्ध शेलार ने इस काम का भार अपने ऊपर लिया पर ताना जी ने बीच में आपत्ति की। तब तो वृद्ध कड़क उठा और कहने लगा 'तानाजी ! आज मैं इस बात को दिखला दूंगा कि इस ८० वर्ष के वृद्ध के शरीर में कितना बल है। जब यह वृद्ध सर सर कर कमन्द द्वारा ऊपर पहुंच जावेगा तब तुम्हें मालूम पड़ेगा कि वृद्ध कैसा है।' तानाजी ने उन को धीरे २ बोलने को कहा पर बूढ़े मामा ने उस ओर कुछ ध्यान न दे कर अपना बड़बड़ाना जारी रक्खा और अन्त में कमन्द निकाल ही तो ली। तानाजी ने उन को रोक कर यह निश्चित किया कि ऐसाकरणेकर अपने ४८ मनुष्यों को ले कर सन्ध्या होते द्रोणागिरि आ जावें। सूर्य्यजी कल्याण दरवाजे की ओर भेजे गये और शेलार तथा ताना जी ने दुर्ग पर चढ़ना विचारा। आज समस्त दिन तानाजी ने बिना अन्न पानी के बिताया था। जब शेलार ने यह जाना तो उन से कुछ खा लेने को कहा पर उन्होंने कहा कि 'आज जब तक दुर्ग हस्तगत न कर लूंगा तब तक अन्न जल नहीं करूंगा।' ऐसा कह कर वे अपने काम में लगे।

भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओट हो गये। संध्या

की कालिमा छा गई। अन्धकार ने समस्त संसार पर अपना पर्दा डाला। ऐसे ही समय में शेलार मामा ने कमन्द निकाली और कमन्द ऊपर फेंकी। यथा योग्य स्थान पर कमन्द चिपट गई। शेलार तथा तानाजी आदि सब ऊपर चढ़ने के उद्योग में लगे। तानाजी अग्रसर हुए और बात की बात में ऊपर जा पहुंचे। तानाजी के बाद एक एक कर सब ऊपर चढ़ गये। ऊपर रायाजी के प्रबन्ध से इस भावी दुर्घटना की किसी को भी सम्भावना नहीं हुई थी। प्रायः १२ मावली वीर योद्धा दुर्ग की प्राचीर पर पहुंच गये। अब मेख ठोक कर ऊपर से और दो रस्से लटका दिये गये। पहरेदारों को कुछ शङ्का हुई तो वे उस ओर बढ़े। एक पहरेदार को उस ओर आता देख ताना जी ने समझा कि अब मामला बिगड़ता है पर घोर अन्धकार के कारण वह पहरेदार ताना जी को न देख सका था। तानाजी ने कुछ न सोच कर तीर द्वारा उसे विद्ध कर भूतलशायी किया और थोड़ी देर के लिए विघ्न की सम्भावना दूर हुई। इतने में लटकाये हुए रस्से द्वारा ५० वीर और ऊपर चढ़ आये।

अब सब से पहिले यह काम करना विचारा गया कि किसी न किसी प्रकार से झुझार बुर्ज पर अधिकार कर

लिया जाय और दुर्ग का द्वार खोल दिया जाय। इस काम के लिये थोड़े से वीर बुर्ज की ओर भेजे गये। चलते समय इन लोगों को समझा दिया गया कि वे किसी प्रकार का भी शब्द न करें क्योंकि ऐसा करने से विजय कठिन हो जायगी। बिचारे बुर्ज पर के लोग ऊंघ रहे थे। उन को क्या ख़बर थी कि उन का काल उन के सिरों पर नाच रहा है। ऐसी अवस्था में मावलियों ने उन पर आक्रमण किया। अचानक आक्रमित होने पर बुर्ज के सिपाही घबड़ाहट में पड़ गये। हक्के बक्के से वे खड़े रह गये। तत्काल मावलियों ने उन की पूरी सफ़ाई कर दी। वहां एक तोप पड़ी थी सो उस में भी कील ठोक दी गई। दूसरा दल द्वार खोलने को भेजा गया था, उसने भी अपना काम पूरा किया। इतने में दुर्ग में खलबली मच गई। उदयभानु अपने मकान से निकल पड़ा और दुर्ग-द्वार की ओर झपटा। दुर्ग के द्वार पर तानाजी डटे थे। वे सूर्य्य जी के इन्तज़ार में थे पर सूर्य्य जी के आने में विलम्ब हुआ।

दुर्ग में अब युद्ध उपस्थित हुआ। मुसलमान सिपाही 'तोबा तोबा' कहते हुए इधर उधर भागने लगे। विकट रण-ताण्डव होने लगा। तलवारों की सपा सपा तथा खटाखट और तीरों की सनसनाहट से दुर्ग कम्पायमान

हो गया। भैरवनाद करता हुआ उदयभानु तानाजी पर टूट पड़ा। एक ही क्षण की लड़ाई ने गहरा रङ्ग पकड़ा। दोनों ही एक दूसरे को गिराने की चेष्टा में संलग्न थे। एक ओर शिवाजी के सुहृद वीर तथा दूसरी ओर मेवाड़ का कुलकलङ्क अपनी २ उग्र वीरता का परिचय देने लगे। ताना जी थके हुए थे पर इतने पर भी वे सफ़ाई तथा फुर्ती से हाथ चला रहे थे। दोनों के मुखों से वीरोचित एवं उत्साहवर्धक वाक्य निकल रहे थे। थोड़ी ही देर के युद्ध में दोनों के शरीर व्रणों से परिपूरित हो गये। इतने में उदयभानु के खड्ग से ताना जी की ढाल फट गई तब उन्हों ने फुर्ती से बायें हाथ से कमर का पटुका खोल डाला और उसे लपेट कर एक नई ढाल तैयार करली पर पर पटुके से बचाव कब तक हो सकता था? तानाजी शिथिल होने लगे और अन्त में उदयभानु के आघात से आहत हो कर वे भूमि पर गिर पड़े। उदयभानु ने अपनी तलवार उन की छाती में घुसेड़ दी। हाय! शिवाजी के चिरकालीन मित्र इस संसार से चल बसे। एक महान् आत्मा ने इस नश्वर देह को त्याग कर वीरकीर्त्ति के साथ स्वर्गलोक को पयान किया।

तत्काल ही ताना जी की मृत्यु का समाचार दुर्ग भर में फैल गया। शैलार दूसरी ओर युद्ध कर रहे थे।

बात की सत्यता जानने के लिये वे इधर झपटे। आते ही उन्हों ने देखा कि उदयभानु ज़ोर शोर से तलवार चला रहा है और तानाजी के लिये अपशब्द भी कहता जाता है। शेलार का धैर्य्य जाता रहा। क्रोध के मारे उन की आंखों से आग बरसने लगी। उन्हों ने हठात् उदयभानु के ऊपर आक्रमण किया। अस्सी वर्ष के वृद्ध को सामने देख उदयभानु दङ्ग रह गया। शेलार के घोर आक्रमण से वह व्यथित हो गया और थोड़ी ही देर में वृद्ध की तलवार ने उस का काम तमाम कर दिया। ताना जी की मृत्यु के कारण मावलियों का धैर्य्य छुटने लगा। उदयभानु के सैनिकों ने ज़ोर पकड़ा। मावली-गण हटने लगे। सूर्य्य जी ने देखा कि कमन्द और रस्सों की ओर बढ़ रहे हैं। यह देख कर उन्होंने कमन्द और रस्सों को काट दिया और कहा 'कापुरुषो! जाओ, अपने प्राणों को कायरों की तरह गंवा दो। ताना जी को खोकर और अपने मुखों में कारिख पोत कर शिवाजी के सामने जाओ और साथ में यह भी देखते जाओ कि ताना जी की बोटी बोटी कैसे काटी जाती है। धिक्कार है तुम सब को! सूर्य्य जी के इन मर्मवेधी शब्दों ने अपूर्व काम किया। महाराष्ट्रीय ठहर गये। अब उन्हों ने पीठ दिखाने की अपेक्षा समर-

क्षेत्र में प्राण देना ही उचित समझा और वे पुनः उदयभानु के सैनिकों से भिड़ गये। एक बार युद्ध ने फिर रौद्ररूप धारण किया। उधर शेलार मामा ने उदयभानु को यमपुरी का रास्ता दिखला दिया था। उस की मृत्यु से दुर्ग में हाहाकार मच गया। इतने में एक और खबर फैली कि एक नवीन सुसज्जित महाराष्ट्रीय सेना चढ़ी चली आ रही है। थोड़ी देर पूर्व जो महाराष्ट्र वीरों की अवस्था हो गई थी ठीक वही हालत अब दुर्गस्थ सैनिकों की हो गई। वे इतस्ततः भागने लगे। जिसने जिधर को मौका देखा वह उधर ही को भाग निकला। अब महाराष्ट्र वीरों ने दुर्ग में प्रलयकाल उपस्थित किया। हताश दुर्गस्थ सेना के पैर लटपटाने लगे। जब सूर्य्य जी ने देखा कि पूर्ण विजय प्राप्त हो गई तो उन्होंने शिवाजी की दुहाई फिरवा दी और घोषित किया कि 'जो हथियार रख देगा वह मारा नहीं जायगा'। घोषणा के सुनते ही हथियार रक्खे जाने लगे। सभों ने सूर्य्य जी को झुक कर प्रणाम किया।

लड़ाई बन्द हुई। सूर्य्यजी ने सब को अभय दान दे कर अपने २ स्थान पर जाने को कहा। उधर शिवाजी भी रायगढ़ को छोड़कर सिंहगढ़ की ओर चले। सिंहगढ़ के निकट आने पर उन को ख़बर मिली कि क़िला फ़तह हो गया है पर ख़बर देने वाले ने ताना जी का कुछ

हाल न कहा। विजय-वार्त्ता सुन कर शिवाजी ने सिंहगढ़ में प्रवेश किया। प्रवेश करने पर वीर मावलियों ने उन को प्रणाम तो किया पर किसी प्रकार का हर्ष न प्रकट किया। जो उनको देखता वही गर्दन झुका लेता। शिवाजी ने सब ही ओर यही रङ्ग देखा तब तो उनके हृदय में व्याकुलता उत्पन्न हुई। आगे बढ़े तो उन को शेलार मामा मिले। उन के सामने एक शव रक्खा हुआ था जिस के ऊपर एक ज़री का दुपट्टा पड़ा हुआ था। शिवाजी को देखते ही शेलार रोने लगे। इस दृश्य के देखते ही शिवाजी का हृदय विदर्ण होगया। उनके मुख से कोई शब्द भी न निकला। तब तो शेलार ने चिल्ला कर कहा "महाराज! हाय महाराज! हाय मेरा तान्हा! आप का प्राणप्यारा तान्हा! हमारे हाथों से छीन लिया गया। हाय महाराज अब मैं क्या करूं! इन हृदयविदारक शब्दों को सुनते ही शिवाजी एकदम कांप उठे। उन्होंने अपने को बहुत ही रोका पर करुणा-समुद्र की लहरों को वे न रोक सके। एक सामान्य बालक की तरह वे ढाह मार कर रोने लगे। कभी तो वे शेलार मामा से लिपट जाते और कभी वे तान्हा जी के शव से चिपट कर रोते। इस हृदय-द्रावक-दृश्य को देख कर उस समय ऐसा कौन था, जो अपने को करुणा-रस के समुद्र में

गोते लगाने से बचा सका था। सब ही रोते थे। शिवा जी का तो अजब हाल था। बिचारे शैलार अपना रोना भूल गये। उल्टे वे शिवाजी को समझाने लगे।

कुछ देर के बाद शिवाजी ने शान्ति ग्रहण की और दुपट्टा उठा कर गौर से तानाजी का मुखावलोकन करने लगे। तानाजी की बड़ी २ आंखें खुली हुईं थीं। मुख पर एक अपूर्व प्रकार का सौन्दर्य्य दिखलाई पड़ता था। शिवाजी कुछ देर तक शव की ओर टकटकी लगाये देखते रहे मानो उनको उनके मरने में अभी सन्देह था। थोड़ी देर के बाद उन्होंने लहाश को ढक दिया और आंसू पोंछते २ वे शैलार मामा से कहने लगे "गढ़ आया पर सिंह गया। भवानी तेरी इच्छा।" सूर्य्यजी ! तुम यही समझो कि शिवाजी मर गया और तानाजी अभी जीवित है। जानकी माता से भी यही कहना कि जैसे मेरा पुत्र शम्भाजी है उसी प्रकार रायवा * भी होगा।

दुर्ग विजय कर शिवाजी ने उदयभानु की स्त्रियों को आदर पूर्वक दिल्ली भिजवा दिया। इस के पश्चात् उन्होंने गढ़ को ठीक करवाने की आज्ञा दी। इस समय

---

* जानकी जी ताना जी की माता का नाम थ और रायवा उन के पुत्र का नाम था।

बालाजी आवजी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि सब की ऐसी इच्छा है कि जिस स्थान पर तानाजी ने अपने प्राण त्यागे हैं उस स्थान पर उन की समाधि बनवा दी जाय। इस बात को सुनते ही शिवाजी ने कहा कि 'इस चूने पर पत्थर की समाधि से तानाजी का क्या होगा? उन की सच्ची समाधि तो मेरे हृदय में बनी है। अच्छा तुम्हारी मर्जी।

इस प्रकार तानाजी को सर्वदा के लिये खोकर शिवाजी ने पुनः सिंहगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया। यह घटना फाल्गुण कृष्णा नवमी सन् १६७० को हुई थी।

नोट—इस घटना का सार, 'सिंहगढ़ विजय' नामक पुस्तक से लिया गया है। जो महाशय इस का पूरा विवरण पढ़ना चाहें वे उपर्युक्त पुस्तक को अभ्युदय प्रेस से मंगवा कर पढ़ें।
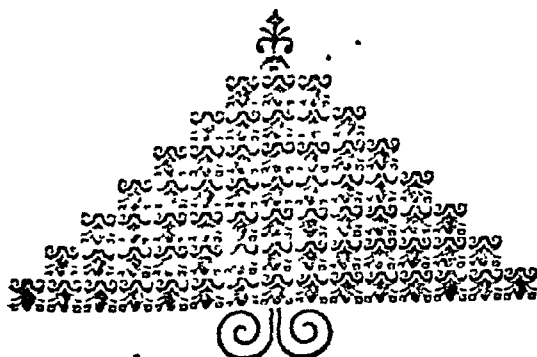
सत्रहवां परिच्छेद ।

राज्याभिषेक और अंत ।

सिंहगढ़ के विजय के पश्चात् महाराष्ट्रियों ने परम प्रचण्ड रूप धारण किया। पुरन्धर, माहुली, कर्नाला, लोहगढ़ तथा जूनार आदि गढ़ शिवाजी के पास आ गये। ऐसे ही समय पर भूषण ने कहा है:—

हुग्ग हर हुग्ग जीते सरजा शिवाजी गाजी
उग्ग नाचे उग्ग पर रुंड मुंड फरके।

इसी समय में सीदियों पर पुनः आक्रमण किया गया। उन का जज़ीरा नामक दुर्ग घेर लिया गया परन्तु उन की नौ-शक्ति के प्राबल्य के कारण दुर्ग प्राप्त करने में सफलता न हुई। सूरत पर एक बार पुनः आक्रमण किया गया और इस बार भी शिवाजी को वहां से बहुत धन प्राप्त हुआ। जिस समय शिवाजी सूरत को लूट कर लौट रहे थे रास्ते में मुग़ल सेना ने उन को घेर लिया। शिवाजी के पास सिपाही भी थोड़े ही थे और मुग़ल सेना कहीं उन से अधिक संख्या में थे। घोर युद्ध होने लगा पर महाराष्ट्रों ने तो उस दिन वह वीरता दिखलाई कि मुग़लों के छक्के छूट गये। मुग़ल सेना भाग खड़ी हुई और महाराष्ट्रों ने उस का पीछा किया

और थोड़ी दूर तक उस को खदेड़ कर लौट आये और जो वे सूरत से लूट लाये थे उस को रायगढ़ पहुंचा दिया। प्रताप राव गुज्जर ने खानदेश पर चढ़ाई कर दी और बरार तक धावे मारे। इन धावों में उन्होंने 'चौथ' तथा 'सरदेशमुखी' खूब ही वसूल की। यह प्रथम ही बार था कि जब मुग़ल साम्राज्य की प्रजा ने दूसरे को कर दिया हो। पेशवा मोरोपन्त ने सन् १६७१ में बागलान के सालहर नामक दुर्ग को अधिकृत कर लिया।

बागलान प्रदेश को एक बार औरङ्गजेब ने स्वयं जीता था अतएव यह प्रदेश मुग़ल राज्य के अधिकार में था। मोरोपन्त ने यहां के दुर्ग को छीन लिया था इस-लिए मुग़लों को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने बड़े ज़ोर शोर से दुर्ग पर पुनरधिकार प्राप्त करने के लिए चढ़ाई की। दुर्ग के भीतर मोरोपन्त डटे थे और जब मुग़लोंने उनको घेर लिया तब प्रतापराव ने मुग़लों के पृष्ठभाग पर आक्रमण किया। विचारों पर दो ओर से मार पड़ने लगी। मार असह्य हुई और वे लोग भाग निकले। मुग़ल सेना ने कभी ऐसी हार महाराष्ट्रों से न खाई थी। सन् १६७३ में पन्हाल दुर्ग पुनः ले लिया गया और अन्नाजी दत्तू ने हुबली को लूट लिया। बिदनौर के राजा ने कर देना स्वीकार कर लिया। अब इस समय

शिवाजी से 'टक्कर लिवैया कोऊ' नहीं था। बीजापुर का गर्व खर्व होगया था। "गोलकुण्डा धीरन" ने पांच लाख रुपये वार्षिक देना स्वीकार कर लिया था और 'बीजापुर बीरन' ने भी तीन लाख रुपये करस्वरूप देकर शिवाजी की प्रभुता को बढ़ा दिया। सचमुच ही उन दिनों 'दिल्लीदरगाह बीच खरभरी' पड़ी थी। औरङ्गजेब ने मन ही मन शिवाजी से हार मानली थी। इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है कि 'चौंकि २ चकत्ता कहत चहुं घात यारो, लेत रहो खबर कहां लौं शिवराज है।' सन् १६७४ में बीजापुर ने एक वार फिर शिवाजी पर चढ़ाई की पर प्रतापराव ने उस सेना को मार कर भगा दिया। इस प्रकार से इन चार वर्षों में शिवाजी ने बहुत कुछ भूमि अपने अधिकार में कर ली। उत्तर में उन की प्रभुता सूरत तक पहुंच गई और दक्षिण में बिदनौर तथा हुबली तक उनकी शक्ति बढ़ गई। बरार, बीजापुर तथा गोलकुण्डा (पूर्व में) तक वे पहुंच गये थे। मुग़ल प्रान्त जो ताप्ती के दक्षिण में थे शिवाजी को 'सरदेशमुखी' देने लगे थे।

तीन बादशाहतों को पछाड़ कर शिवाजी ने स्वतन्त्र हिन्दू राज्य स्थापित किया। हम पीछे लिख आये हैं कि बीजापुर तथा गोलकुण्डा की बादशाहतों ने कर देना

स्वीकार कर लिया था। औरङ्गजेब ने भी शिवाजी को 'राजा' की सनद देदी थी। ऐसी अवस्था में उन्होंने स्वतन्त्र छत्र धारण कर हिन्दू राज्य स्थापन करना उचित समझा अत-एव वे सन् १६७४ के आनन्द नाम सम्वत् की ज्येष्ठशुक्ला त्रयोदशी बृहस्पतिवार को रायगढ़ में शिवाजी का राजतिलक हुआ। आज हिन्दुओं की इच्छा पूर्ण हुई। शताब्दियों की परतन्त्रता दूर हुई। राजतिलक होने पर उन का नाम 'छत्रपति महाराज शिवाजी भोंसले' हुआ। सिंहासनारोहण के दिन से महाराष्ट्र देश में एक नवीन जीवन का सञ्चार हुआ और उसी दिन से 'शिवशक' नाम का एक शाका चलाया गया जो अब तक कोल्हापुर के राजघराने में चला आता है।

राज्याभिषेक के समय काशी से गाग भट्ट बुलवाये गये थे। जिस समय शिवाजी का अभिषेक हुआ था तो उन का यज्ञोपवीत संस्कार भी करवाया गया था। अद्यावधि उन का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ था अत-एव स्टील आदि का मत है कि शिवाजी क्षत्रिय नहीं थे किन्तु शूद्र थे। दूसरों ने भी ऐसा लिखा है कि "शिवाजी शूद्र थे परन्तु जब उन का राजतिलक हुआ तब इस बात की आवश्यकता समझी गई कि वे क्षत्रिय सिद्ध किये जायँ क्योंकि भारत में क्षत्रियों के सिवाय कोई दूसरा

राजा नहीं होता आया है अतएव जब वे गद्दी पर बैठे तो पण्डितों ने उन को क्षत्रिय बना दिया" परन्तु ऐसा मत भ्रममूलक है। शिवाजी क्षत्रिय थे इस में कुछ सन्देह नहीं है। लुकजी यादवराव ने जो प्राचीन देवगिरि के यादवों (जो क्षत्रिय थे) के वंशज थे, अपनी कन्या को शाहजी के साथ विवाहा था। यदि शाहजी (शिवाजी के पिता) शूद्रवंशीय होते तो यह विवाह सम्बन्ध कदापि न होता। दूसरे जिस समय मिर्जा राजा जय सिंह ने दक्षिण पर चढ़ाई की थी तब शिवाजी ने उन से सन्धि कर ली थी। चिटनीस आदि इतिहास-लेखक लिखते हैं कि जय सिंह ने शिवाजी के साथ खान पान का व्यवहार किया था और साथ ही उन को क्षत्रिय भी माना था। इस के सिवाय महाकवि भूषण ने जो एक पद छोड़ा है उस से बहुत कुछ सन्देह दूर होता है। वह पद यह है 'लियो विरद सीसौदिया, दियो ईस को सीस।' इस से मालूम देता है कि शिवाजी का कुल उदयपुर के सीसौदिया वंश की एक शाखा है। शिवाजी के क्षत्रिय होने के प्रमाण तो कई एक मिलते हैं पर उन के शूद्र होने के प्रमाण कुछ युक्तिसङ्गत नहीं हैं।

अभिषेक के समय भिन्न २ राज्यों से दूत आये थे।

सूरत के अङ्गरेजी प्रेसिडेण्ट ने भी अपना एक अङ्गरेजी एलची भेजा था। सभा में पहुंचने पर उस दूत ने शिवाजी तथा शम्भाजी को भेंटें दीं। इन भेटों से शिवाजी बहुत प्रसन्न हुए। भेट देने के पश्चात् उस दूत ने कहा कि हमारे प्रेसिडेण्ट ने हम को इसलिये भेजा है कि आप के दरबार से हम लोगों को इस बात की अनुमति मिल जावे कि जिन शर्तों पर अगरेज फारस में व्यापार करते हैं उन्हीं शर्तों पर वे यहां भी कर सकें। और आपका सिक्का हमारे राज्य में तथा हमारा सिक्का आपके राज्य में चलाया जा सके और इस के सिवाय जो जहाज या माल कोकण के सामुद्रिक किनारे पर लुट जाय अथवा तूफान से नष्ट हो जाय तो उससे होने वाली हानि पूरी कर दी जाय पर शिवाजी ने इन शर्तों को नामंजूर किया और उन से इस प्रकार की सन्धि की गई जिस के द्वारा अङ्गरेजों को शिवाजी के राज्य में व्यापार करने की आज्ञा दी गई। उन्होंने २॥) सैकड़ा महसूल देना मञ्जूर किया और इस के साथ ही शिवाजी के सिक्कों को भी उपयोग में लाना स्वीकार किया। इस सन्धि में बीस शर्तें थीं जिन में से मुख्य दो तीन यहां दे दी गई हैं।

इस दूत ने शिवाजी के दरबार का कुछ वर्णन

किया है। उस ने महाराज शिवाजी को एक विशाल एवं देदीप्यमान राजसिंहासन पर बैठा देखा था। उन के वीर सरदार बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण किये हुए उन के दोनों ओर खड़े हुए थे। सिंहासन के नीचे शम्भाजी, मोरोपन्त तथा नारायण पण्डित बैठे हुए थे। शेष सब सरदारगण नम्र भाव धारण किये हुए खड़े थे। शिवाजी के सिंहासन के दाहिनी ओर सुवर्ण की दो बड़ी २ मछलियां लटक रहीं थीं और वाम ओर एक सुवर्ण की तुला भाले पर लटक रही थी।

सिंहासनासीन होने के पश्चात् शिवाजी पुनः राज्यवृद्धि के यत्न में लगे। उन्हों ने देखा कि दक्षिण के यवन-राज्य नितान्त शिथिल हो गये हैं और औरङ्गजेब उन को थोड़े ही दिनों में ग्रस लेगा। इसी समय मुगलों ने गोलकुण्डा पर चढ़ाई की। गोलकुण्डा ने शिवाजी से सहायता मांगी। सहायता देने के लिये हम्मीर राव रायगढ़ से भेजे गये। इस वीर ने गोलकुण्डा पहुंच कर मुगल-सेना को हटा दिया और थोड़े दिनों के लिये गोलकुण्डा को मुग़लों के पञ्जे से बचा दिया। कुछ दिनों के पश्चात् स्वयं शिवाजी ने गोलकुण्डा की सहायता के लिये तञ्जौर पर चढ़ाई की और विलौर तथा जिञ्जी को जीतते हुए मैसूर तक पहुंच गये। मुग़लों ने गोल-

कुण्डा छोड़ कर बीजापुर पर धावा कर दिया। बीजा-पुर इतना कमजोर हो गया था कि उस को अपनी रक्षा करनी कठिन दिखलाई देने लगी। शिवाजी से सहा-यता मांगने के सिवाय और कोई उस के पास उपाय न था। शिवाजी से उस ने सहायता मांगी और उन्होंने उस को सहायता प्रदान की। इस वार शिवाजी की सेना ने मुग़लों की धज्जियां उड़ा दीं। सूरत से ले कर बुरहानपुर तक फैली हुई मुग़ल सेना में हाय तोबा पड़ गई। अन्त में मुगलों को बीजापुर छोड़ देना पड़ा। यह घटना सन् १६७९ की है। इस के कुछ ही काल पूर्व माता जीजीबाई का स्वर्गवास हो गया था।

सन् १६८० ई० में शिवाजी के घुटनों में असह्य पीड़ा उठी। उन में इतनी पीड़ा बढ़ी कि उन के घुटने फूल गये। घुटने फूलने के साथ ही उन को ज्वर भी आ गया। यह ज्वर फिर न उतरा। इसी कालज्वर में ५ अप्रेल को महाराज का स्वर्गवास हुआ। इस समय इन की अवस्था ५३ वर्ष की थी। इन के दो पुत्र थे, ज्येष्ठ पुत्र का नाम शम्भा जी और कनिष्ठ का नाम राजाराम था।

मृत्यु के समय इन्होंने चार सौ मील का लम्बा चौड़ा राज्य छोड़ा था। कर्नाटक का दक्षिणीय अर्द्ध

भाग भी इन के अधिकार में आ गया था। तञ्जौर भी इन के राज्य में सम्मिलित था। नर्मदा से कोकरा तक इनका राज्य फैल गया था। इस समय इन के पास तीस हज़ार सवार तथा चालीस हज़ार पैदल सिपाही थे।

अठारहवां परिच्छेद ।

महाराज की शक्ति ।

हम प्रारम्भिक परिच्छेद में लिख आये हैं कि महाराज शिवाजी ने छोटे २ तृण बटोर कर एक मोटा रस्सा तैयार कर दिया। महाराष्ट्र-राज्य-स्थापन एक व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं हुआ था। महाराष्ट्रों में जो स्वातन्त्र्य-बीज चिरकाल से मौजूद था महाराज ने उसी बीज से एक वृक्ष पैदा कर दिया। इस वृक्ष के बढ़ाने में उन को उपयुक्त पुरुषों से सहायता मिली थी अतएव उन सहायक पुरुषों का उल्लेख आवश्यक है। इस राज्यरूपी वृक्ष को बढ़ाने के लिये प्रथम शिक्षा अथवा सहायता जीजीबाई की थी। बाल्यावस्था ही में जीजीबाई ने महाराज को हिन्दू-राज्य-स्थापन करने के लिए उपदेश दिया था और उसी उपदेश को ले कर छत्रपति कार्य्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। अवतीर्णावस्था में दादा कोंणदेव ने अतुल सहायता दी। इन दोनों की सहायता एवं शिक्षा का वर्णन हम पीछे कर आये हैं।

शिवाजी को आजन्म प्रोत्साहन देने वाले श्री समर्थ रामदास स्वामी थे। जिस समय महाराज शिवाजी ने कार्य्य-क्षेत्र में पग रक्खा था उसी समय रामदास स्वामी

ने उन से कहा था "जितने तीर्थ-क्षेत्र थे वे सब नष्ट हो गये हैं। ब्राह्मणों के रहने के स्थान सब अपवित्र कर दिये गये हैं। सारी पृथ्वी पर युद्ध होने के कारण धर्म्म का नाश हो गया है। प्रजावर्ग के सुख-सम्मान का लोप हो गया है। यवन उन से खोटा बर्ताव कर रहे हैं और मनमानी यन्त्रणा दे रहे हैं इसलिए यदि तुम इस दुर्दशा से इस पवित्र भूमि को उबारा चाहते हो तो तुम को निम्न बातों का साधन करना चाहिए—'सब से पहिली बात यह है कि धर्म्म की रक्षा के हेतु जीवन को न्यौछावर कर सब मराठों को एक मत कर अपने धर्म्म को फैलाओ। परस्पर में एका बांधो और इस प्रकार से बैरियों को परास्त करने का दृढ़ संकल्प करो। दृढ़ता और अध्यवसाय के साथ शत्रुओं पर चारों ओर से आ टूटो।'' शिवाजी को बालकपन ही से हिन्दू धर्म में अगाढ़ रुचि थी। धर्म्म के ऊपर उन का अटल विश्वास था। धार्म्मिक विश्वासों में राजनैतिक मंत्र फूंका गया था। धर्म्म को लिये हुए राज्य-स्थापन की शिक्षा उन को मिली थी क्योंकि शिक्षकों ने इस बात की परमावश्यकता समझी कि भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहां बिना धर्म्म को साथ लिये हुए राज्य-स्थापन करना नितान्त असाध्य है अतएव उन्हों ने एक प्रकार के पोलिटिकल

धर्म्म को जन्म दिया और इसी धर्म्म से शिवाजी दीक्षित हुए थे।

पोलिटिकल धर्म्म क्या था? पाठकगण इस के समझने के लिये उत्सुक होंगे अतएव इस के विषय में कुछ लिखना आवश्यक है। इस धर्म्म की मूल 'भक्ति' में थी। शिक्षकों ने इस 'भक्ति' को एक नवीन धारा में बहाया। जगदीश्वर में भक्ति रखते हुए उन्होंने सर्व साधारण में 'भक्ति' का स्रोत बहा दिया। यहां इतना कहना अनावश्यक नहीं होगा कि उस समय के शिक्षक प्रायः शूद्र-कुल-दीपक थे अतएव इन लोगों से नीच वर्णों में भक्ति अथवा प्रेम भाव खूब ही फैला। उच्च वर्ण वाले भी इस से कुछ असन्तुष्ट न थे। उन्होंने भी इन को सहारा दिया अतएव थोड़े ही दिनों में एक नवीन जातीयता झलकने लगी जो थोड़े ही दिनों में पुष्ट हो गई। मुसलमानों ने अपने अत्याचार से समस्त हिन्दुओं को दुःखित कर दिया था। ये लोग भी उस अत्याचार से पीड़ित हुए थे अतएव शिक्षकों ने उस में एक नवीन मन्त्र फूंका। यह मंत्र वही था जिस की व्याख्या स्वामी रामदास ने शिवा जी से की थी। इस प्रकार मुसलमानों के अत्याचार से शिक्षकों ने 'प्रेम धर्म्म' को राजनैतिक धर्म्म से मिला कर एक प्रकार के नवीन धर्म्म की शिक्षा का प्रचार किया।

शिवाजी उच्चकुलोद्भव थे परन्तु इसी शिक्षा के कारण वे नीचातिनीच हिन्दुओं से घृणा नहीं करते थे। अतएव नीच हिन्दू भी उन को अपना समझते थे इस प्रकार परस्पर सुहृद्भाव अति शीघ्र स्थापित हो गया। प्रेम के साथ ही साथ चिरकालस्थित स्वातन्त्र्य-बीज वर्धित होने लगा और शीघ्र ही उस ने सुन्दर वृक्ष का स्वरूप धारण कर लिया। प्रेम-शिक्षा-दीक्षित शिवाजी ने वे मित्र बना लिए जिन्होंने आजन्म उन का साथ न छोड़ा। नैपोलियन के सहायक एवं मित्र बहुत से थे परन्तु वे सब स्वामिभक्त नहीं थे। उन का मित्र 'मुरा' उन को कठिन समय पर धोखा दे गया था। शिवाजी के पास ऐसा एक भी 'मुरा' न था। जगद्विजयी सिकन्दर को भी अपने मित्रों से भय बना रखता था पर शिवाजी को इस बात का भय कदापि न था। प्रसिद्ध जूलियस सीज़र, जिनका ब्रूटस् हार्दिक मित्र था, अपने उसी मित्र के हाथ से मारा गया था परन्तु शिवाजी को ऐसी मृत्यु का कदापि भय न था। उपर्युक्त वीरों के हृदयों में केवल राजनैतिक विषयों का स्रोत बहता था। राज्य बढ़ाने में मतलब गाँठना उन का सब से बड़ा काम था अतएव उन के मित्रों में एक अन्य प्रकार का प्रेम था जो राजनैतिक कारणों से अति शीघ्र टूट जाता

था पर यहां यह बात न थी। राज्य वृद्धि के साथ ही साथ प्राचीन 'प्रेम' भी बढ़ता था। उसी प्रेम शिक्षा के कारण मैत्रीभाव का टूटना असम्भव था।

महाराज शिवाजी अपनी शक्ति के उपयोग करने में सिद्धहस्त थे। जिस समय वे शत्रु-दल पर विजय पाते थे उस समय वे शत्रु दल के अनेक योद्धाओं को अपने दल में ले लेते थे और वेही योद्धा जो कुछ दिन पहिले शिवाजी को यमपुर पहुंचाने के लिये कुछ उठा नहीं रखते थे पश्चात्काल में वेही शिवाजी के लिये सहर्ष प्राण देते थे। इतिहास में बड़े २ शूर वीर, तथा राज-नीति-विशारद योद्धा हुए हैं जिन को इतिहास ने शिवाजी से कहीं उच्च पद प्रदान किया है पर कदा-चित् वे इस अपूर्व शक्ति से वञ्चित थे। शत्रु दल के वीरों पर विश्वास करना नीति-विरुद्ध है। इस का शिवाजीने अपनी शक्ति द्वारा पूर्ण रूप से खण्डन किया है। उन्होंने दिखला दिया है कि मनुष्य मनुष्य के हृदय को क्यों कर जीत सकता है। बाजी प्रभु देश-पांडे शिवाजी का शत्रु था पर जब वह शिवाजी की ओर हो गया तब उसी ने महाराष्ट्रीय थरमापुली में महाराष्ट्र-केसरी की रक्षा की थी। इस प्रकार का एक उदाहरण नहीं किन्तु शतशः उदाहरण मिलते हैं।

घोर-शत्रु-सिंह को बकरी बनाना शिवाजी अच्छी तरह जानते थे।

शिवाजी ने जिस समय राष्ट्र-स्थापन-क्षेत्र में पदार्पण किया था उन की शक्ति तीन मित्रों में स्थित थी जिन के नाम हम पीछे दे आये हैं। प्रारम्भिक काल में इन वीरों ने वीर मावलियों को अपनाया। भोले भाले मावली शिवाजी पर मुग्ध हो गये। वे उन को सहज ही अपना नेता समझने लगे। इस स्थल पर इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि महाराज ने अपना कार्य मावली वीरों से प्रारम्भ किया था। इन में उन्होंने कुछ अपूर्व गुण देखे थे। शिवाजी की सेना में इन का वैसा ही मान था जैसा कि आज कल बृटिश सेना में 'हाईलैण्डर्स' तथा रूसी सेना में 'कज्जाकों' का मान है।

मावलियों को अपना कर शिवाजी महाराज ने उच्च घरानों को अपनी ओर किया। इन घरानों से उन को अनेक वीर मिले जिन में प्रतापराव गुज्जर, हम्मीरराव, शीदोजी निम्बाल्कर तथा शम्भाजी मोरे शिवाजी के सहायकों में अग्रसर रहे। रूपजी भोंसले तथा नेमाजी सिन्धी के द्वारा उच्च वंशों ने शिवाजी का साथ दिया था। शिवाजी जितनी ही उन्नति करते जाते थे उतने ही सहायक उन को प्राप्त होते जाते थे। मुसलमान भी उन

के चरित्रों पर मुग्ध हो गय थे। मुसलमानों को दबा कर या धमका कर उन्होंने उन को अपनी ओर नहीं किया था। वे लोग स्वयं उन की सेना में आ कर सम्मिलित होते थे। उन की नौ-शक्ति का एडमिरल 'दरयासुरङ्ग' था। इतना ही नहीं किन्तु जिस समय बीजापुर-नव्वाब ने अपनी कुछ सेना को निकाल दिया था। शिवाजी ने उस सेना के कुछ भाग को अपने यहां रख लिया था। रघु-बल्लाल मुसलमानी सेना के सेनापति बनाये गये थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवाजी में कुछ विचित्र शक्ति थी।

शिवाजी ने जिस राज्य का स्थापन किया था उस के कितने ही साधक स्तम्भ थे। साधकों के दो वृहत् विभाग थे। प्रथम जिन का सम्बन्ध केवल युद्ध से ही रहता था और द्वितीय जो युद्ध में भाग लेते हुए भी अधिकतर राज्य-सञ्चालन में योग देते थे। इन स्तम्भों की संख्या प्रायः पचास से ऊपर थी। इन पचासों में से कुछ पुरुष-पुङ्गवों का उल्लेख कर देना हम आवश्यक समझते हैं। मोरो पन्थ का नाम इस गणना के आरम्भ में आता है। अपने बाहुबल से ये पेशवा पद पर पहुंच गये थे। इनमें कई गुण थे। राज्य-सञ्चालन के सिवाय ये युद्ध-विद्या-विशारद भी थे। व्यूहरचनामें तो ये अपने समय के द्रोणाचार्य्य थे। दुर्गनिर्माण कराने में भी आप सिद्ध-

हस्त थे। युद्ध-विद्या की कुशलता का परिचय आपने उत्तरीय कोकण तथा बागलान के विजयों में दिया था। शासनादि कार्यों में ये शिवाजी के एक प्रकार से मन्त्री थे। पन्तजी के पश्चात् आवाजी स्वर्णदेव का नाम आता है। पन्त के गुण इनमें भी उपस्थित थे। कल्याण-विजय का टीका इन्हीं के माथे पर लगाया गया था। शिवाजी के यहां ये पहिले ही 'मजूमदार' हुए।

अन्नाजी दत्तू ने अपनी वीरता एवं रणकुशलता का परिचय 'पन्हाल' तथा 'रांगना' के विजय करने में दिया था। दक्षिणीय कोकण का अधिकार इनके हाथ में दिया गया था। जिस समय शिवाजी दिल्ली को गये थे उस समय यह शिवाजी की सेना के सेनापति थे। प्रतापराव गुज्जर भी एक ही वीर शिवाजी के यहां थे। मुगलों के आक्रमण के समय इन्हों ने अपनी उग्र सामरिक कुशलता का परिचय दिया था। बीजापुर की सेना इन के नाम से कांपती थी। एक बार इस वीर ने बीजापुर की सेना को परास्त किया और थोड़ी दूर तक उस को खदेड़ कर लौट आये। शिवाजी ने इस बात पर अप्रसन्नता प्रकट की और कहा "तुम को चाहिए था कि तुम उस का बहुत दूर तक पीछा करते। मालूम पड़ता है कि तुम में सेना-पतित्व की योग्यता नहीं है।" गुज्जर के हृदय में ये वाक्य

वाण की तरह लगे। यह चाहते तो उस समय 'हाहुली-राय' बन सकते थे। 'मुरा' बन कर शिवाजी का सर्व-नाश करने को उद्यत हो जाते पर नहीं इस वीर ने शिवाजी के ही लिये प्राण गवाना उचित समझा। दूसरी वार शत्रु-दल पर इन्हों ने पुनः घोर आक्रमण किया। प्रतापराव प्रचण्ड वेग से अरि-सैन्य-समूह में घुस गये। विपक्षियों के पैर उखड़ गये और वे भाग निकले पर प्रतापराव ने अपना प्रायश्चित्त वहीं किया। शत्रु-सैन्य से घिर कर वे मारे गये। जिस समय शिवाजी ने इस समाचार को सुना उनके आंसू निकल आये थे और उन्होंने अपने अन्त समय तक उन की मृत्यु के लिए परि-ताप किया था।

तानाजी मूलसरे के विषय में इतना ही लिखना यथेष्ट होगा कि वे शिवाजी के दाहिने हाथ थे। तानाजी की बिना सलाह के महाराज कुछ भी नहीं करते थे। उनके ऊपर उनका कितना प्रेम था सो तानाजी की मृत्यु के समय के महाराज के मुख से निकले हुए शब्दों से ज्ञात हो सकता है। ऐसे ही वीरों को प्राप्त कर 'होंते शिवाजी न समर्थ कैसे'। इनमें से कोई भी ऐसा न था जो अपने कर्त्तव्य से कभी विमुख हुआ हो। इस कर्त्तव्य-परायणता का पता उस समय लगता है जिस समय महाराज दिल्ली में अचानक बन्दी होगये थे। जिस समय वे वहां से लौटे हैं

की उन्होंने किसी विभाग में कुछ गड़बड़ी न पाई। महा-राज को ऐसा ज्ञात हुआ कि उनकी अनुपस्थिति में वैसा ही काम होता रहा जैसा कि उनकी उपस्थिति में होता था। यह क्या बात थी? बात यह थी कि इन लोगों ने यह शिक्षा प्राप्त की थी जिससे ये स्वतन्त्रता से काम चला सकें। इस बात का प्रमाण हमको उस समय मिलता है जिस समय औरङ्गजेब ने शम्भाजी को बन्दी कर मरवा डाला था पर महाराष्ट्र-राज्य को किञ्चित् भी धक्का न लगा था। औरङ्गजेब स्वयं कई वर्षों तक दक्षिण में रहा और बीजापुर तथा गोलकुण्डा का सर्वनाश भी उस ने कर डाला पर महाराष्ट्र-राज्य का वह बाल भी बाँका न कर सका। औरङ्गजेब ने स्वयं इस बात को माना है कि मेरी सेना १९ वर्ष तक उन से लड़ती रही पर वहां हानि तो दूर रही स्वयं उन की धन-वृद्धि होती रही। इन बातों से पता चलता है कि शिवाजी अपनी शक्ति को इस प्रकार से उपयोग में लाये थे कि महाराष्ट्र-राज्य स्थिर रूप से स्थित हो।

स्थल-शक्ति को दृढ़ रखने के लिये उन के पास उपयुक्त सैन्य-बल था। उन के पास शूरवीर, कार्य-दक्ष तथा स्वामिभक्त सेनानी थे पर शक्ति को स्थिर रूप से रखने के लिये नौ-शक्ति की भी आवश्यकता होती है। जिस राज्य की एक सीमा समुद्र-तट से मिली

हुई है उस के लिये दृढ़ नाविक-शक्ति का रखना अत्यावश्यक है। इस के सिवाय जिस के पास नौ-शक्ति नहीं है उस के राज्य का एक अंग अति निर्बल रहता है। शिवाजी इस बात को समझ गये थे अतएव उन्होंने नौ-शक्ति की भी स्थापना की। इस नौ-शक्ति से वे बड़े २ कार्य्य साधते थे। इसी से समुद्र तटस्थ राज्य की रक्षा होती थी। कभी इस शक्ति के द्वारा मक्का जाने वाले यात्री भी लूट लिये जाते थे। सन् १६६२ से जलपथ द्वारा युद्धारम्भ किया गया था। इस समय इन के पास युद्धोपयोगी अठासी जहाज थे। इस के सिवाय ५० हज़ार रखतरी भी बनवाई गईं थीं। जहाजी सेना की संख्या प्रायः चार या पांच हज़ार के लगभग थी। पहिली चढ़ाई बरसिलौर पर की गई थी और द्वितीय चढ़ाई सन् १६६५ में हुई थी। इन दोनों चढ़ाइयों में उन को बहुतसा धन प्राप्त हुआ था। इस शक्ति का प्रधान एडमिरल 'दरिया सारंग' था। शिवाजी को जल एवं स्थल शक्ति का पूर्ण ध्यान रहता था। वे अपने दोनों अङ्गों को पुष्ट करना उचित समझते थे। शक्ति-प्रस्तरण में उन का यह ध्यान सदा रहता था कि ऐसी शक्ति स्थापित की जाय जो भविष्य में भी क़ायम रह सके और भविष्य-सन्तान उस शक्ति को उचित उपयोग में ला कर अधिक शक्तिशाली राष्ट्र की वृद्धि कर सके।

उन्नीसवां परिच्छेद ।

शासन प्रणाली ।

जितनी भूमि महाराज शिवाजी के अधिकार में थी वह कई प्रकार के विभागों में विभक्त थी । सब से प्रथम पर्वतीय-भाग—इस में प्रायः पर्वतीय दुर्ग थे जिन का शासन एक विशेष रूप से होता था। द्वितीय समभूभाग—जो दो भागों में विभाजित था अर्थात् 'महाल' और 'प्रान्त'। यह सब भूमि "स्वराज्य" कहलाती थी क्योंकि वह उन की ख़ास अमलदारी में थी। इस के सिवाय जो इलाक़ा मुगलों के राज्य में था वह शिवाजी को 'चौथ' या 'सरदेशमुखी' देता था वह "मुगलिया" कहलाता था *। इन तीनों प्रकार के इलाकों का शासन भिन्न २ प्रकार से होता था पर इन का प्रबन्ध एक विशेष सभा द्वारा होता था जिस का नाम 'अष्ट प्रधान' था। महाराज शिवाजी ने अपनी शासन प्रणाली के आठ भाग कर डाले थे और प्रत्येक भाग के प्रबन्ध के लिए उन्होंने एक २ प्रधान पदाधिकारी नियुक्त किया था। इन्हीं प्रधान पदाधिकारी

---

* कदाचित् गोलकुण्डा तथा बीजापुर के सम्बन्ध में भी यही होगा।

पुरुषों से मिल कर 'अष्टप्रधान' सभा बनती थी। इसी सभा द्वारा राज्य-सञ्चालन-कार्य होता था। प्रत्येक की उपाधि भिन्न होती थी। यथा (१) पेशवा—जो प्रधान पदाधिकारी इस उपाधि से विभूषित किया जाता था वह राजमन्त्री होता था। दरबार में 'पेशवा' सिंहासन की दाईं ओर बैठते थे। (२) सेनापति—शिवाजी के राज्य-काल के पूर्व इस का नाम 'सरनोबत' होता था पर महाराज ने उस नाम को परिवर्त्तित कर "सेनापति" रख दिया। इन के ऊपर समस्त सेना का भार था। ये दरबार में बाईं ओर प्रथम बैठते थे। (३) पन्त अमात्य—ये कोषाध्यक्ष होते थे और पेशवा के बाद बैठते थे और इन्हीं के नीचे (४) पन्त सचिव—जिन का काम कोष-निरीक्षण था, बैठते थे। इन के बाद (५) मन्त्री—महाराज का प्राइवेट सेक्रेटरी—का आसन होता था। अब बाईं ओर (६) परराष्ट्र-सचिव—सुमन्त—बैठते थे। सेनापति के बाद इन का आसन था। इन के पश्चात् (७) पण्डित-राव का आसन था। इन का काम शास्त्रों से धार्म्मिक व्यवस्था को प्रमाणीभूत कर दिखलाना होता था। कोई २ इन को न्यायशास्त्री के नाम से भी सम्बोधित करते थे क्योंकि न्यायालय में भी इन को शास्त्रीय प्रमाण देने पड़ते थे। (८) न्यायाधीश—का आसन पण्डितराव के पास लगता था और ये चीफ जस्टिस थे।

यह अष्टप्रधान सभा प्रायः उसी प्रकार की थी जिस प्रकार की वर्त्तमान वायसराय की 'इम्पीरियल इग्जिक्यूटिव कौंसिल' है।

हम पीछे लिख आये हैं कि शिवाजी का राज्य पर्वतीय 'दुर्गों' 'प्रान्तों' तथा 'महालों' में विभक्त था। महाराज दुर्गों की उपयोगिता को खूब समझते थे। दुर्गों की रक्षा का उन को पूरा ध्यान रहता था। उन के लिये वे धन का कदापि लोभ नहीं करते थे। उन के पास प्रायः २८० दुर्ग थे। प्रत्येक दुर्ग एक मराठा 'हवलदार' के आधीन रहता था। इस हवलदार के कतिपय सहायक रहते थे जिन पर प्रत्येक दीवार का रक्षण-भार रहता था। प्रत्येक दुर्ग में एक उच्च कुलोद्भव ब्राह्मण तथा एक 'प्रभु' भी रहते थे। धन एवं आय व्यय सम्बन्धी काम ब्राह्मण के सिपुर्द रहते थे। प्रभु के अधिकार में अन्न-कोष का प्रबंध रहता था। दुर्गों के नीचे जो जङ्गल होता था उस का प्रबन्ध 'रामोशिस' तथा अन्य नीच जातिवालों द्वारा होता था। दुर्ग की अवस्थानुसार उस में सेना रक्खी जाती थी।

महाराज शिवाजी का राज्य १४ प्रान्तों में विभाजित था। उन चौदह प्रान्तों के नाम ये हैं (१) मावल जिस में वर्त्तमान मावल, सासवद, जूनार, तथा खेद के ताल्लुके सम्मिलित थे। (२) सितारा जिस में वाई, सितारा,

तथा कराड़ के तालुके थे। (३) पन्हाल (कोल्हापुर का पश्चिमीय प्रदेश) (४) दक्षिणीय कोंकण (वर्त्तमान रत्नगिरि प्रदेश) (५) थाना (उत्तरीय कोंकण) (६) त्रिम्बक (७) बागलान (उक्त दोनों प्रान्त वर्त्तमान नासिक प्रदेश में थे) (८) वाणगढ़ (वर्त्तमान धारवार) (९) बदनौर (१०) कोल्हर (११) श्रीरङ्गपट्टन (उक्त तीनों वर्त्तमान मैसोर राज्य में थे) (१२) कर्नाटक (१३) वीलोर (अरकाट प्रदेश) (१४) तञ्जौर इस प्रकार से चौदह प्रान्त थे। हम अभी लिख आये हैं कि महाराज शिवाजी के राज्य में प्रायः २८० दुर्ग थे। महाराज शिवाजी ने उन दुर्गों को प्रान्तों में बाँट दिया था जिस से प्रान्तों की पूर्ण रक्षा होती थी। प्रान्त महालों में और महाल ग्रामों में विभक्त थे।

प्रत्येक प्रान्त एक सूबेदार के आधीन रहता था। कर एवं दण्ड सम्बन्धी शासन उसी के अधिकार में रहता था। धन आदिक के मुकद्दमे भी जो उस समय बहुत कम होते थे उसी के पास आते थे तब वह उन को ग्रामिक पञ्चायतों के सिपुर्द कर देता था। प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य्य उसी अष्टप्रधान सभा द्वारा सञ्चालित होता था। उसी के द्वारा ये सूबेदार तथा अन्य पदाधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

राज्य-कर के सम्बन्ध में महाराज शिवाजी ने बड़ा

ही अच्छा प्रबन्ध किया था। यह प्रबन्ध बहुत कुछ विख्यात भूमि-प्रबन्धक राजा टोडरमल के प्रबन्ध से मिलता जुलता था। इस प्रबन्ध के पूर्व दक्षिण में भूमि कर प्राप्त करने वाले काश्तकारों से अधिक धन वसूल करते थे और कदाचित् वसूल किये हुए धन में से आधा धन राज्य-कोष में जमा करते थे। कृषकों की कहीं सुनाई भी नहीं होती थी इसीलिये भूमिके वसूल करने वाले बड़ा अत्याचार करते थे। कभी २ इन अत्याचारों के कारण दङ्गा फिसाद हो जाता था और जानें भी जाती थीं। शिवाजी ने इन सब बातों पर विचार कर नया प्रबन्ध किया। भूमि-कर वसूल करने वाले प्रायः ज़िमीन्दार होते थे। शिवाजी ने उन से यह काम छीन लिया और 'काम विशदर' * को यह सुपुर्द किया। इस की तनख्वाह भी सरकार से नियत कर दी गई थी। इस का काम यह होता था कि उपज को देख कर यथा योग्य भूमि-कर लगा देवे और पश्चात् धन स्वरूप में उस को वसूल कर लेवे। भूमि-कर नियत करने के पूर्व खेत अच्छी तरह से नाप लिए जाते थे और रजिस्टरों में दर्ज कर लिए जाते थे। यदि कृषक अन्न-स्वरूप में कर देते थे तो वे उपज से

---

* इस शब्द का शुद्ध रूप ज्ञात नहीं हो सका। कदाचित् कार्य्य-विशारद का अपभ्रंश हो। ले०

पांच में दो हिस्सों से अधिक नहीं लिया जाता था। भूमि-कर वसूल करने वाला उस अन्न को बेच डालता था और धन को राजकोष में भेज देता था था। दैवी कोप के समय कृषकों को तगाई (तक़ावी) दी जाती थी जिस के वसूल करने में उन को कष्ट नहीं दिया जाता था।

शिवाजी के राज्य में जिमींदार तो थे पर जागीरदार नहीं थे। जागीर प्रणाली को उन्होंने तोड़ दिया था। क्षुद्र कर्म्मचारी से पेशवा तक सब ही को मासिक वेतन मिलता था। जिस राज्य में जागीरदार होते थे उस राज्य की मूल निर्बल हो जाती थी। जागीरदार और उन के वंशज जब शक्तिशाली हो जाते थे, तब वे बड़ा उत्पात मचाते थे और उस का फल यह निकलता था कि राजा बड़ी आपत्ति में पड़ जाता था। उस समय जागीरदारों को अपने राजा की सहायता के लिए सेना रखनी पड़ती थी। किसी जागीरदार ने देखा कि राजा निर्बल है और उस के पास सेना है ही तो वह राजा के दबाने का यत्न करता। महाराज इस बात को समझते थे अतएव उन्होंने इस प्रथा को को तोड़ दिया। दूरदर्शिता से उन्होंने ज़िमींदारों को भी अपनी रक्षा के लिए दुर्गादि न बनाने की आज्ञा दी थी। जागीरें जो दी भी जाती थीं तो सर्व साधारण के काम के लिए जैसे

मन्दिरादि के निमित्त। इन जागीरों की रक्षा सरकार से होती थी। पुजारी इत्यादि को सेना रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। कर्मचारी परम्परागत भी नहीं होते थे। यह बात नहीं थी कि पेशवा का पुत्र भी उनकी मृत्यु के अनन्तर पेशवा के पद को प्राप्त करे। उपरोक्त पुरुष स्थापनापन्न किये जाते थे।

पैदल सेना में दस सिपाहियों के ऊपर एक 'नायक' रहता था और ऐसे पांच नायकों के ऊपर एक "हवलदार" होता था। दो हवलदारों का आधिपत्य एक 'जुमलेदार' के पास होता था और दस जुमलेदार एक 'हजारी' के प्रभुत्व में रहते थे अर्थात् एक हज़ार सिपाहियों के ऊपर एक 'हजारी' होता था। सात हज़ार सिपाहियों का सञ्चालक 'सरनोवत' कहलाता था। सवारों की सेना दो प्रकार की थी, एक 'बारगीर' और दूसरी 'सिलीदार'। पच्चीस सवारों के ऊपर एक 'हवलदार' और पांच हवलदारों के ऊपर एक जुमलेदार रहता था। दस जुमलेदारों के ऊपर एक 'हजारी' और पांच हजारियों के ऊपर एक 'पंचहजारी' होता था। 'पञ्चहजारी' के ऊपर एक 'सरनोवत' रहता था। उच्चकर्मचारियों के पास एक ब्राह्मण 'सबनीस' और एक 'कारकुन' प्रभु रहते थे। इन का काम कमसरियट के सम्बन्ध में था। सवारों के

हज़ारी को एक हज़ार हान्स (एक प्रकार का सिक्का) और पञ्चहज़ारी को दो हज़ार मिलते थे। पैदलों के हज़ारी को पांच सौ मिलते थे। नीचे के अधिकारियों का वेतन योग्यता के अनुसार होता था। वर्ष के आठ महीनों तक सिपाहियों का वेतन 'चौथ' तथा 'सरदेशमुखी' द्वारा दिया जाता था। जब कोई नवीन सैनिक भर्ती होने के लिए आता था तब उस को एक सैनिक से सिफारिश करवानी पड़ती थी। वह सिफारिश इस बात की होती थी कि यह प्रार्थी इस विश्वास के योग्य है कि यह लूट मार में से कुछ नहीं चुरावेगा।

शिवाजी के यहां एक गुप्तचरों का भी डिपार्टमेण्ट था। इन में वे ही मनुष्य रहते थे जो अधिक विश्वास-योग्य तथा सुचतुर होते थे। उन का काम यह रहता था कि शत्रु के सम्बन्ध में समाचार दिया करें। ये लोग अपने कार्य्य में इतने दक्ष थे कि शिवाजी को यथासमय सच्चा हाल ज्ञात हो जाता था। इस में कोई भी सन्देह नहीं है कि शिवाजी महाराज के यहां रिश्वतखोरों की अधिकता नहीं थी।

वीसवां परिच्छेद ।

सिंहावलोकन ।

भारत के इतिहास में सत्रहवीं शताब्दि ऐतिहासिक पुरुषों से परिपूर्ण है। इसी समय में हिन्दूपति राणा राजसिंह हुए जिन की राजनीति के सामने औरङ्गजेब सरीखे कुटिल-राजनीति-विशारदों को सिर झुकाना पड़ा। महाराज जयसिंह और यशवन्त सिंह का भी यही समय था। गुरु गोविन्दसिंह भी इसी शताब्दि में हुए थे। गुरु तेग़ बहादुर ने इसी शताब्दि में 'सिर दिया पर सार न दिया' था। प्रसिद्ध राठौर दुर्गादास ने ऐसे ही दुष्कर समय में मारवाड़ का नाम रक्खा था। इन पुरुष-सिंहों पर विचार कर हम कह सकते हैं कि सत्रहवीं शताब्दि में भारत माता की गोद में अनेक वीर तथा राजनीतिज्ञ सन्तानें खेलीं थीं। इतने हिन्दू वीरों के होते हुए भी भारत की क्या अवस्था थी? इस का उत्तर भूषण से मिलता है:—

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे डूबे राजा राव सबै गए लबकी।
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप,
अपनी ही बार सब मार गए दबकी।
पीरा पैगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी।

कासि हू की कला गई मथुरा मसीद भई,

... ... ।"

इस कविता में जो भाव दिखलाया गया है वह सर्वथा सत्य है। उस समय भारत की यही दशा थी। इस कवित्त के अन्त में कहा गया है "सिवाजी न होत तो सुनत होति सब की" यह भी बिल्कुल ठीक है। वास्तव में यदि उस समय शिवाजी सरीखे वीर पुरुष न हुए होते तो कदाचित् 'चारों वर्ण धर्म्म छोड़ि कलमा निमाज पढ़ि' मुसलमान हो जाते क्योंकि औरङ्गजेब उस समय घोर अत्याचार कर रहा था। यथाः—

"कुम्भकरण असुर औतारी औरङ्गजेब
कीन्हो मथुरा कतल दुहाई फेरि रबकी।
खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला
बांके लाखन तुरुक कीन्हे छूटि गई तब की॥"

अब आप जान सकते हैं कि हिन्दू धर्म्मकी उस समय क्या अवस्था थी? इधर हिन्दू धर्म्म की यह अवस्था थी और उधर औरङ्गजेब की सर्वग्रासी नीति भारतवासियों का सर्वनाश कर रही थी। सर्वनाश इसीलिये कर रही थी कि राजा जयसिंह और यशवन्त सिंह आदि बने ही रहे और औरङ्गजेब ने विश्वनाथ को ध्वंस कर उन्हीं के पास मसजिद बनवाही दी। इन दोनों की उपस्थिति

में ही 'जज़िया' लगा दिया गया था। इन के वीरत्व में किञ्चित् सन्देह नहीं है। प्रतिज्ञा-पालन में ये अचल थे पर नहीं मालूम क्यों ये वीर-पुङ्गव औरङ्गजेब के चंगुल में फँसे रह कर हिन्दू धर्म पर कुठार चलता देखते रहे। कदाचित् प्रतिज्ञा-पालन ही कारण रहा हो।

शिवाजी ने औरङ्गजेब के कपट-पाश को छिन्नभिन्न कर दिया था क्योंकि 'औरङ्ग है शिवराज बली जिन नौरङ्ग में रङ्ग एक न राख्यौ'। शिवाजी की जीवन-घटनाओं का वर्णन हम पीछे कर आये हैं अब हम को उन के चरित्र की आलोचना करनी है। शिवाजी वीर-कुल-चूड़ामणि थे। उन के समय के वीरों ने उन को पूर्ण मान दिया था पर खेद इस बात का है कि विदेशी इतिहासकारों ने उन का वीरोचित सम्मान नहीं किया है। मान सम्मान करना तो दूर, एक साहब लिखते हैं:—
"—for craft and trickery he was reckoned a sharp son of the Devil, the Father of Fraud" कोई इन को 'लुटेरा' कोई इन को 'शैतान का पुत्र' कोई 'काफ़िर' व 'जहन्नुमरफ्त' 'पहाड़ी चूहा' व "सग" आदिक अप-शब्दों से अलंकृत कर गये हैं। जिस का केवल कारण यह है कि शिवाजी का चरित्र-चित्रण मुख्यतः मुसल्मानी पुस्तकोंके आधार पर किया गया है। कदाचित् मराठा इतिहासकारों के ऊपर उन का पूर्ण विश्वास नहीं था।

हां, इस में सन्देह नहीं कि शिवाजी की तुलना यूरोप के ऐतिहासिक वीरों से नहीं हो सकती है। यूरोप में जगद्विजेता सिकन्दर हुए हैं पर शिवाजी उन को आदर्श के नहीं हैं क्योंकि उन्हों ने स्वजन-बान्धवों की हत्या कर अपने को कलुषित नहीं किया था। यदि कहो शिवाजी जूलियस सीज़र की समता के थे तो भी नहीं क्योंकि उन्हों ने अपनी सहधर्म्मिणी के साथ कभी पाशविक बर्त्ताव नहीं किया और न उन में उस के समान गर्व तथा दम्भ था। शिवाजी नेपोलियन भी नहीं कहे जा सकते क्योंकि उन्हों ने 'अदम्भ-जनक हत्याएँ" नहीं की थीं और न उन्हों ने जीते हुए राज्य को अपने भाई भतीजों के हाथ में दे दिया था। यूरोप में ऐसे बहुत कम वीर हुए हैं जिन का 'पब्लिक' तथा 'प्राइवेट' जीवन एक सा रहा हो इसीलिये उन की तुलना महाराष्ट्र-वीर शिवाजी से नहीं हो सकती है।

महाराज शिवाजी दाहिने हाथ में धर्म्म की डोर तथा बाएँ हाथ में राजनीति की डोर ले कर कार्य्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए थे। धर्म्म को वे सदा आगे रखते थे और कभी २ उस में राजनीति की रस्सी भी जोड़ देते थे पर उन का यह सर्वदा ध्यान रहता था कि राजनीति से धर्म्म लुप्त न हो जाय। शिवाजी की प्राथमिक शिक्षा

धर्म्म-शिक्षा थी। माता जीजीबाई को उसी शिक्षा द्वारा भारत का उत्थान कराना अभीष्ट था। धर्म्म की शिक्षा का प्रभाव उन पर इतना पड़ गया था कि बाल्यावस्था ही से वे मुसलमानों से घृणा करने लगे थे। उन के बाल्यकाल की एक बात प्रसिद्ध है। उस से उन के भविष्य-जीवन का पता लगता है। बीजापुर के दरबार में मुरार पन्त एक उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। शाहजी से उन का मेल जोल था। एक दिन मुरार पन्त ने शिवाजी से कहा 'चलो तुम्हें शाह से मिला लावें'। मुरारपन्त ने सोचा कि बालक चलने में प्रसन्नता प्रकट करेगा पर उन को बड़ा आश्चर्य हुआ जब शिवाजी ने जवाब में कहा "हम हिन्दू हैं, बादशाह मुसलमान हैं इसलिए वह महानीच हैं। मैं ऐसे मनुष्य से मिलना नहीं चाहता हूं। ऐसे मनुष्य को छूना भी मैं महा अपकर्म समझता हूं जो गौ और ब्राह्मणों का वध करवाता हो। मुरार पन्त आश्चर्य्य में पड़ गये। कुछ रुक कर शिवाजी फिर बोले, मैं ऐसे मनुष्य को बादशाह नहीं मानता हूं। सलाम करना तो दूर रहा मन में आता है कि उस का गला काट डालूं।" मुरारपन्त के होश उड़ गये। उन्हों ने शाहजी से यह सब हाल कहा तब वे शिवाजी को समझा कर उन को दरबार में ले गये।

शिवाजी वहां गये पर सलाम नहीं किया। शाहजी ने यह कह कर कि यह दरबार के नियमों से अपरिचित है शाह को अप्रसन्न न होने दिया। शिवाजी ने वहां से लौट कर वस्त्र बदले और स्नान किया।

बालकपनमें मुसलमानों के प्रति इतनी घृणा का होना आश्चर्य है। खासकर उसके हृदयमें जिसके पिता, पितामह तथा मातामह इत्यादि यवन राज्यमें उच्चकर्मचारी रहे हों। माता की शिक्षा बड़ी प्रबल होती है। माता ने मुसल-मानों का अत्याचार देखा था इस से उन के हृदय में असह्य वेदना हुई थी। वेदना से मर्म्माहत हो उन्होंने शिवाजी के हृदय पर उस भाव को अङ्कित किया था। माता अपनी सन्तान के भविष्य को बहुत कुछ सुधार सकती है। वीर नेपोलियन की भविष्य उन्नति उन की माता ही के कारण हुई थी जिस का उल्लेख स्वयं नेपो-लियन ने किया है। सिकन्दर का भी यही हाल था। शिवाजी क्या थे और अन्त में क्या हो गये इस की आदि कारण उन की माता जीजीबाई ही थीं।

शिवा जी के बाल्यकाल का बहुत बड़ा भाग वीर कथाओं के सुनने में व्यतीत हुआ था। उन्होंने 'रावण' तथा 'वेणु' आदि के अत्याचारों के उपाख्यानों को सुना था। उन्हों ने पाण्डवों की कथा सुनी थी। वीर पुरुषों

के चरित्र उनके कानों में पड़े थे अतएव, उन के हृदय में भी वीरता के कार्यों के करने की लालसा उत्पन्न हुई थी। स्वदेश की दशा का वर्णन सुन कर 'स्वदेशरक्षा' का भाव उन के हृदय में उत्पन्न हुआ था। इसी बीच में दादाजी कोणदेव की शिक्षा ने अद्भुत प्रभाव डाला। अपने देश की दुरवस्था का पूर्ण परिचय शिवाजी ने उन के द्वारा प्राप्त किया। जिस समय शिवाजी उन के साथ जागीर में घूमने निकलते तब दादाजी उन को देश की शोचनीय अवस्था दिखलाते थे। होनहार बालक इन सब को देखता था। स्वदेश की शोचनीय अवस्था को देख कर उन के आंसू निकल आते थे। अन्त में उन्हों ने अपना कर्त्तव्य कार्य्य आरम्भ किया।

अपने कार्य्यारम्भ के समय से ही उन्होंने 'पोलिटिकल धर्म्म' का अनुसरण किया। प्रेमभाव द्वारा उन्होंने मावलियों को अपनी ओर कर लिया था। उन्हीं को लेकर वे कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। महाराज में प्रेम-भाव स्थापन करने की अद्भुत शक्ति थी। जो उनसे एक वार अच्छी तरह बात कर लेता वह जन्मान्त के लिये उनका भक्त बन जाता था। नैपोलियन के सैनिक उसको बड़े प्रेम से देखते थे। उन के लिये वे अपने प्राणों को तुच्छ समझते थे। शिवा जी के सैनिक उनसे भी कुछ बढ़े चढ़े

थे। इनमें प्रेम एवं प्रभु-भक्ति का अद्भुत सम्मिश्रण था। शिवाजी यदि अपने किसी सैनिक को डांट या फटकार देते तो भी वह बुरा न मानता था।

आत्मसंयमी होना बड़ा कठिन होता है। प्रायः मनुष्य पाकर सब ही इस व्रत को विसार देते हैं पर शिवाजी ने इस को कभी न भुलाया था। अकबरशाह मुसलमान बादशाहों में महान् शक्तिशाली सम्राट् हुए हैं। उन्होंने प्रायः समस्त भारत को अपने शासन-पाश में बांध लिया था पर आत्मसंयम वे भी न कर सके। 'नौरोज़' उनके कुत्सित कार्यों का उदाहरण है। इतिहास ने शाहजहां को भी धर्मप्रिय सम्राट् माना है पर इस संयम में वे भी कच्चे थे। उन्हों ने तो आत्मसंयम की सीमा को इतना ध्वस्त कर दिया था कि वे अपने न चखने योग्य फल के आस्वादन के लिये भी तत्पर हो गये थे। शिवाजी पूर्ण आत्मसंयमी थे। जिस समय महाराष्ट्रों ने कल्याण दुर्ग पर अधिकार किया था उस समय नीलपन्त ने दुर्गाध्यक्ष की रूपवती कन्या * को बन्दी कर लिया। यह बाला अनुपम सुन्दरी थी। नीलपन्त ने समझा था कि इस को शिवाजी महाराज की भेट कर मैं उन का विशेष कृपापात्र बनूंगा। दरबार में पहुंच

* किसी २ ने इस को दुर्गाध्यक्ष की वधू लिखा है। ले०

कर उन्हों ने उस को उपस्थित किया। शिवा जी ने सुन्दरी को देख कर पन्त से पूछा 'यह कौन है?' पन्तजी ने कहा 'यह मौलाना साहब की कन्या है और मैं इस को श्रीमान् के लिये लाया हूं।" इतना सुनते ही शिवाजी की निगाह बदल गई। उन्होंने गम्भीर भाव धारण कर कहा "पन्तजी! क्या मुझ को विषयान्ध कामी समझ कर इस भेट को मेरे पास लाये हो? राजसत्ता प्राप्त कर क्या मैं स्त्रियों के भोग में लिप्त रहूंगा? सरदार! तुम्हारा हृदय मलिन तथा कलुषित हो गया है। ऐसा पुरुष विजेता नहीं हो सकता है। यदि हम परस्त्री ग्रहण करने लगेंगे तो राज्य-कार्य्य नहीं हो सकते। हमारा यह धर्म्म नहीं हैं कि स्त्रियों पर अत्याचार करें। तुम्हें अपने कर्त्तव्य का विचार नहीं है। यह बाला मेरी भगिनी के तुल्य है।" पन्त लज्जित हो गये। पीछे वह यवनपुत्री अपने बाप के पास भेज दी गई। शिवा जी आजन्म स्त्रियों का सम्मान करते रहे। अफ़ज़ल ख़ां को जब उन्होंने मारा था तब उनके 'हरम' को अपने अधिकार में नहीं कर लिया था वरञ्च उस को सादर बीजापुर भिजवा दिया था। स्त्रियों पर अत्याचार करना उन्होंने मुसलमान बादशाहों से नहीं सीखा था। किसी 'पद्मिनी' के लिए उन्हों ने कभी चढ़ाई नहीं की थी। उन के आक्रमण हिन्दू-राज्य-स्थापन के लिये होते थे।

राज्य-स्थापन में सब से अधिक साहस की आवश्यकता है। बिना साहस के राज्य-स्थापन नहीं हो सकता। सीज़र ने साहस से ही 'रुबिकन' को पार कर रोम साम्राज्य का अधिकार प्राप्त किया था। हजारों गोलों के बीच में अकेले झण्डा ले कर नैपोलियन ने साहस का परिचय दिया था जिस के फल में उन को वस्तुतः यूरोप का 'राज्य-मुकुट' प्राप्त हुआ था। शिवाजी में भी उस साहस की कमी न थी। पच्चीस सावलियों से शायस्त ख़ां को जीतना शिवाजी का साहस ही था। रुद्रमण्डल का विजय उन के साहस ही का फल-स्वरूप था। उन के साहस में एक अतुल शक्ति निश्रित थी। वह शक्ति 'धैर्य्य' थी। कठिन से कठिन समय पड़ने पर भी शिवाजी धैर्य्यच्युत नहीं होते थे। राजा जयसिंह का विश्वास कर महाराज दिल्ली गये थे। वहां औरङ्गजेब ने उन को बन्दी कर लिया। शिवाजी ने वहां धैर्य्य से काम लिया जिस के कारण वे सकुशल रायगढ़ लौट आये।

'क्षमा वीरस्य भूषणम्' उन का मूल मन्त्र था। विजित के ऊपर दयाभाव दिखाना वे खूब जानते थे। इतना ही नहीं किन्तु महानुभावता का भी पूर्ण परिचय देते थे। मुसलमानों का परम प्रिय 'क़त्लं आम' इन

के समय में नहीं होता था और न रूसियों की तरह युद्ध-क़ैदी मरवा डाले जाते थे। तैमूर की तरह उन्होंने लाखों बन्दियों का शिरोच्छेदन भी कभी नहीं करवाये थे। सिंहगढ़-विजय में जिस समय तानाजी मारे गये थे उस समय वे नादिरशाही करवा सकते थे पर नहीं, मित्र को खो कर भी उन्होंने दयालुता का ही परिचय दिया था। महानुभावता का उत्कृष्ट उदाहरण हमें उन के बिलारी-दुर्ग-विजय के समय मिलता है। मलवाई देशाइन नाम की एक विधवा वीराङ्गना उक्त दुर्ग की अधिकारिणी थी। शिवाजी की सेना ने उस पर आक्रमण किया। सत्ताईस दिन तक शिवाजी की सेना उस की शक्ति को न दबा सकी। अट्ठाईसवें दिन मावलियों ने उस पर अधिकार कर लिया। उस समय वीराङ्गना ने शोक प्रकट किया और कहा अबलाओं पर विजय प्राप्त करना क्या वीरों का उत्कृष्ट कर्म है? महाराज ने जब इस बात को सुना उन का हृदय गद्गद् हो गया और उन्होंने सम्मान सहित दुर्ग उस को लौटा दिया। जहां शिवाजी की राजपताका फहराने लगी थी वहीं पुनः बिलारी की पताका उड्डीयमान होने लगी।

हिन्दुओं से युद्ध करने में शिवाजी का हृदय कांप उठता था। अपने जाति-भाइयों का रक्त बहाना उनको

कदापि अभीष्ट नहीं था। हिन्दू दुर्गाध्यक्षों से युद्ध करने के पूर्व वे उन को समझाते थे पर जब वे न मानते तो उन पर फिर प्रचण्ड रूप से आक्रमण होता था। स्वदेश-द्रोहियों से उन को बड़ी घृणा थी। चन्द्रराव मोरे इसी घृणा के कारण मारा गया था। विश्वासघात करना भी उनको बिल्कुल नापसन्द था। जिस समय रघु बल्लाल ने बाजी को मारा था उस समय महाराज उन से बहुत ही अप्रसन्न हुए थे यहां तक कि उन को हीन पद दे कर मुसलमान सेना का सेनानी बनाया था। न्याय पर तो वे इतने आरूढ़ थे कि अन्यायी को कठिन से भी कठिन दण्ड देते थे। एक बार उन के एक सेनापति ने बन्दियों को रिश्वत ले कर छोड़ दिया था। शिवाजी को यह बात मालूम हो गई। उन्होंने उस को इतना तिरस्कृत किया कि वह वहां से चला गया। उन्होंने अपने पुत्र शम्भाजी को भी उस के अधर्म्म-कार्य्य के कारण दंडित करने से न छोड़ा था। उन का यह दोष था कि उस का एक ब्राह्मण बाला से अनुचित सम्बन्ध था। न्याय करने में वे ब्रूटस् से भी बढ़े चढ़े थे।

मुसलमानों पर भी वे कभी अन्याय नहीं करते थे। उनका किसी भी दूसरे मत से विरोध न था। मुसलमानों से उनका विरोध राज्य के लिए था न कि धर्म्म विषय में।

उन की आज्ञा थी कि कोई मसजिदों को भी हानि न पहुंचाये। उन के हाथों में यदि कभी कुरान पड़ गई तो वे उस की औरङ्गजेबी गति नहीं बनाते थे और न वे कभी कुरानों से तापते थे। मुसलमानों पर धार्मिक अत्याचार न करते हुए वे गो-ब्राह्मण की रक्षा के लिए कटिबद्ध रहते थे। देश को मुसलमानों से छीन लेना वे न्यायसङ्गत समझते थे।

जो लोग शिवाजी को लुटेरा बतलाते हैं उन को समझना चाहिये कि इस तरह से तो परराज्य पर चढ़ाई करने वाला प्रत्येक राजा लुटेरा कहा जा सकता है। सिकन्दर और डाकू की बातचीत जिन्हों ने पढ़ी है उन को ज्ञात हो सकता है कि उस डाकू की दृष्टि से जगद्विजयी सिकन्दर भी 'लुटेरा' तथा 'डाकू' से कम न था। वास्तव में किसी राजा का अपने शत्रु के धन को छीन लेना डाकूपन नहीं है। इतिहास में शिवाजी से बढ़ कर लुटेरे हुए हैं पर उन को किसी ने भी लुटेरा न बतलाया। महमूद गज़नवी, शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी, और नादिरशाह को किसी ने भी लुटेरा न कहा। ऐतिहासिक लुटेरे तो धन लूट कर अपने कोष भरते थे पर बिचारे शिवाजी ग़रीबों तथा काश्तकारों की उस लूट से रक्षा करते थे।

'लुटेरे' शिवाजी से उन के सब देश-बान्धव प्रसन्न रहते थे। उन के नौकर तथा सम्बन्धी उन से पूर्ण सन्तुष्ट रहते थे। जो लुटेरे न होकर शक्तिशाली सम्राट् कहला गये हैं उन के भी भाग्य ऐसे नहीं थे। औरङ्गजेब ने "जिसने कि ठौर बाप बादशाह शाहजहां, ताको कैद कियो मानो मक्के आग लाई है" पर शिवाजी की पितृ-भक्ति कैसी थी सो पीछे लिख आये हैं, पुनः उस के लिखने की आवश्यकता नहीं है। औरङ्गजेब की तरह भाइयों के साथ विश्वासघात कर उन का वध नहीं किया था। एक बार उन के सौतेले भाई वङ्कजी ने शिवाजी पर चढ़ाई करना विचारा पर शिवाजी के सदुपदेश से वे शान्त हो गये थे। शिवाजी मितभाषी थे। वे निरर्थक बात करना नापसन्द करते थे अतएव उन को निकम्मे मुसाहिबों की भी आवश्यकता नहीं थी। उन के विचार सदा पवित्र रहते थे। अपनी दिनचर्य्या के वे इतने पाबन्द थे कि कोई काम क्यों न आ पड़े वे नित्य-कर्म्म अवश्य कर लेते तब अन्य ओर ध्यान देते थे।

औरङ्गजेब ने जो उन का चिरशत्रु था उन की मृत्यु के पश्चात् कहा था कि 'वास्तव में शिवाजी एक वीर योद्धा था'। विदेशियों को केवल इन शब्दों से शिवाजी के चरित्र पर विचार करना चाहिए।